

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_186455

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H633
V99 A Accession No. G.H. 2852

Author ब्यास, नारायण डुलीचन्द

Title अन्नों की खेती १९५५

This book should be returned on or before the date last marked below.

अन्नों की खेती

—अन्नों की खेती विषयक महत्वपूर्ण जानकारी—

नारायण दुलीचंद व्यास



पुस्तक भंड के निमित्त है



१९५६

सत्साहित्य प्रकाशन

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल
नई नल्ली

नवीन परिवर्द्धित संस्करण : १९५६

मूल्य
दो रुपये

मुद्रक
श्यामकुमार गर्ग
हिन्दी प्रिन्टिंग प्रेस
दिल्ली

प्रकाशकाय

हमारा देश कृषि-प्रधान देश है। यहाँ की अधिकांश आबादी खेती-बारी का धंधा करती है। वस्तुतः सारे धंधों में खेती का स्थान बहुत ऊँचा है। बिना अन्न के जीवन ही नहीं चल सकता।

लेकिन खेद है कि हिंदी में कृषि-विषयक साहित्य जितना होना चाहिए, उतना नहीं है। विशेषकर एक ऐसी पुस्तक का अभाव तो बहुत ही खटकता था, जो प्रामाणिक रूप से खेती के बारे में विस्तृत और पूरी जानकारी दे सके। प्रस्तुत पुस्तक से उस अभाव की पूर्ति हो रही है, इसकी हमें बड़ी प्रसन्नता है। इसके लेखक अपने विषय के विशेषज्ञ हैं और बड़े परिश्रम से उन्होंने इस पुस्तक की सामग्री प्रस्तुत की है।

हमें विश्वास है कि इस पुस्तक को पढ़ कर उन व्यक्तियों को तो लाभ होगा ही, जो खेती के काम में संलग्न हैं अथवा जिनकी इस कार्य में रुचि है, लेकिन साथ ही इसके अध्ययन से सामान्य पाठकों को भी अनेक ज्ञातव्य बातें मालूम होंगी।

इस पुस्तक में केवल अन्न के विषय में जानकारी दी गई है। दालों के बारे में लेखक की 'दलहन की खेती' का अध्ययन लाभदायक होगा।

—मन्त्री

भूमिका

इस पुस्तक की सामग्री लेखक की 'खेती की रीति' से ली गई है। उपर्युक्त प्रकाशन तीन भागों में हुआ था। जब पुनः प्रकाशन का प्रश्न आया तो कुछ पाठकों ने ऐसा सुझाव दिया कि 'खेती की रीति' के अधिक खण्ड बना दिये जायें तो वे विशेष उपयोगी होंगे। इसलिए उपर्युक्त पुस्तक के विषयों का विभाजन कई खण्डों में कर दिया गया है, जिसका एक खण्ड यह है। 'खेती की रीति' में प्रान्तीय क्षेत्रफल इत्यादि की जो सारणियां दी गई थीं वे हटा दी गई हैं, क्योंकि नये प्रान्तों का निर्माण हो जाने से वे काम की नहीं रही और अभी नये प्रान्तों की ऐसी सारणी उपलब्ध नहीं हैं। उपलब्ध हो जाने पर अगले संस्करण में उनका समावेश कर दिया जायगा। वैसे समस्त भारत से सम्बन्धित सारणियां इन खण्डों के अन्त में दी गई हैं।

२०-६-१९५६

—नारायण दुलीचन्द व्यास

विषय-सूची

१. गेहूँ

१-४१

व्यवसायिक वर्गीकरण (२) जलवायु (५) भूमि और जुताई (६) गेहूँ में खाद्य-मूल्य (८) हेरफेर और मिश्रण (१५) बीज और बोआई (१५) निराई, निंदाई या सोहनी (२२) सिंचाई (२३) कीट (२४) व्याधियाँ (२६) फसल की तैयारी (३१) उपज (३६) वितरण और व्यवसाय (३७) उपयोग और गुण (३६) ।

२. धान (चावल)

४२-७७

व्यवसायिक जातियाँ (४३) जलवायु (४६) भूमि और जुताई (४६) खाद (४८) हेरफेर और मिश्रण (५१) बीज और बोआई (५१) धान की उन्नत जातियाँ (५२) निंदाई और देखभाल (६१) सिंचाई (६२) धान के शत्रु (६३) व्याधियाँ (६५) फसल की तैयारी और उपज (६६) धान या चावल को सुरक्षित रखने के उपाय (६६) वितरण और व्यवसाय (७०) चावल निकालने की रीतियाँ (७२) उपयोग और गुण (७४) धान की खेती की जापानी रीति (७७) ।

३. जई

७८-८१

जलवायु (७८) जमीन और जुताई (७८) खाद और हेरफेर (७९) बीज और बोआई (८०) सिंचाई (८०) जई के शत्रु (८०) फसल की तैयारी और उपज (८१) वितरण और व्यवसाय (८१) उपयोग और गुण (८१) ।

४. जव

८२-८२

जलवायु (८३) भूमि और जुताई (८४) खाद (८५) बीज और बोआई (८६) निंदाई (८८) सिंचाई (८८) जव के शत्रु (८९)

फसल की तैयारी और उपज (८६) वितरण और व्यवसाय (९०) उपयोग और गुण (९१) ।

५. ज्वार

६३-११३

ज्वार की जातियाँ (६३) ज्वार का व्यापारी वर्गीकरण (६४) जलवायु (६६) भूमि और जुताई (६७) खाद और हेरफेर (६९) बीज और बोआई (१०२) निंदाई और देखभाल (१०४) सिंचाई (१०५) कीट और व्याधियाँ (१०६) फसल की तैयारी और उपज (१०७) वितरण और व्यवसाय (१११) उपयोग और गुण (११२) ।

६. बाजरा

११४-१२३

जलवायु (११५) भूमि और जुताई (११५) खाद और हेरफेर (११६) बीज और बोआई (११८) निंदाई और देख-भाल (११९) सिंचाई (१२०) कीट और व्याधियाँ (१२०) फसल की तैयारी और उपज (१२१) वितरण और व्यवसाय (१२२) उपयोग और गुण (१२३) ।

७. मक्का

१२४-१४०

व्यवसायिक जातियाँ (१२५) जलवायु (१२६) भूमि और जुताई (१२७) खाद और हेरफेर (१२८) बीज और बोआई (१३१) निंदाई और देखभाल (१३३) सिंचाई (१३४) कीट और व्याधियाँ (१३५) फसल की तैयारी और उपज (१३५) वितरण और व्यवसाय (१३७) उपयोग और गुण (१३८) ।

८. कंगनी, राला

१४१-१४५

जलवायु (१४१) भूमि और जुताई (१४१) खाद और हेरफेर (१४२) बीज और बोआई (१४३) निंदाई और देखभाल (१४४) सिंचाई (१४४) कीट और व्याधियाँ (१४४) फसल की तैयारी और उपज (१४४) वितरण और व्यवसाय (१४५) उपयोग और गुण (१४५) ।

६. कोदी, कोदरा

१४६-१४६

जलवायु (१४६) भूमि और जुताई (१४६) खाद और हेरफेर (१४७) बीज और बोआई (१४७) निंदाई और देखभाल सिंचाई (१४८) कीट और व्याधियाँ (१४८) फसल की तैयारी और उपज (१४८) वितरण और व्यवसाय (१४९) उपयोग और गुण (१४९)।

१०. चीना, वारी

१५०-१५३

जलवायु (१५०) भूमि और जुताई (१५०) खाद और फसल का हेरफेर (१५१) बीज और बोआई (१५१) निंदाई और देखभाल (१५२) कीट और व्याधियाँ (१५२) फसल की तैयारी और उपज (१५२) वितरण और व्यवसाय (१५२) उपयोग और गुण (१५२)।

११. मरुवा, रागी

१५४-१६२

जलवायु (१५४) भूमि और जुताई (१५५) खाद और हेरफेर (१५६) बीज और बोआई (१५७) निंदाई और देखभाल (१५८) सिंचाई (१५८) कीट और व्याधियाँ (१५८) फसल की तैयारी और उपज (१६०) वितरण और व्यवसाय (१६१) उपयोग और गुण (१६१)।

१२. समरई, कुटकी, गुडली, सांवां

१६३-१६७

जलवायु (१६३) भूमि और जुताई (१६४) खाद और फसल का हेरफेर (१६४) बीज और बोआई (१६५) निंदाई और देखभाल (१६५) सिंचाई (१६५) कीट और व्याधियाँ (१६६) फसल की तैयारी और उपज (१६६) वितरण और व्यवसाय (१६६) उपयोग और गुण (१६६)।

१३. परिशिष्ट १

१६८

अन्नो की खेती का क्षेत्रफल और उपज (१६८)।

अन्नों की खेती

: १ :

गेहूँ Wheat *Triticum* Var.

भारतवर्ष में गेहूँ की खेती अज्ञात समय से होती आ रही है। लगभग पाँच हजार वर्ष के पुराने गेहूँ सिंधु नदी की घाटी में मोहनजोडाड़ो (Mohenjo-daro) की खुदाई में मिले हैं। इनका नमूना भारत सरकार की प्रधान कृषि - प्रयोगशाला (इण्डियन एग्रिकलचरल रिसर्च इन्स्टीट्यूट), नई दिल्ली के बनस्पति-विज्ञान विभाग में रक्खा हुआ है। ये गेहूँ छोटे दानेवाले होते थे। ऐसे गेहूँ की खेती कहीं-कहीं अब भी होती है।

गेहूँ का पौधा बरानी (बिना सिंचाईवाले) खेतों में दो-ढाई फुट से तीन-चार फुट ऊँचा हो जाता है और सिंचाईवाले खेतों में यह ऊँचाई पाँच फुट और उससे भी कुछ अधिक हो जाती है। डण्डी पतली एक सूत इतनी मोटी और पोली होती है। पत्त पतले, सीधी धारीवाले, करीब एक फुट लम्बे और आध इंच चौड़े होते हैं। बाल सीकदार या बिना सीक-वाले होते हैं जिनपर गेहूँ के दाने अधिकांश जातियों पर बराबर की कतारों में होते हैं।

वैज्ञानिक अनुसन्धानार्थ भारत में होनेवाले गेहूँ की जाँच हावर्ड महोदय ने की थी तो उनकी खोजानुसार गेहूँ का विभाजन पाँच^१ जातियों

१. Report on the Marketing of Wheat in India, 1935, p.176.

Triticum vulgare, *Triticum*, *durum*, *Triticum compactum*, *Triticum dicocum* and *Triticum turgidum*.

S. Percival says; *Triticum compactum* did not exist in India. It is *Triticum Sphaerococum*. The wheat plant, 1921.

का पाया गया परन्तु इनमें से सिर्फ दो जातियों की खेती महत्वपूर्ण रही और अब भी है। इन जातियों के नाम ट्रिटीकम वलगारी और ट्रिटीकम ड्यूरम हैं। इनमें भी समस्त भारत में होनेवाले गेहूँ के ८५ शतांश क्षेत्रफल में वलगारी जाति के गेहूँ बोये जाते हैं और शेष में दूसरी जातियों के।

उपर्युक्त दोनों ही जातियों में लाल और सफेद दोनों रंग के गेहूँ होते हैं। इनमें मुख्य भेद यह है कि ड्यूरम का दाना बड़ा और भारी होता है। यदि संख्या में दोनों जाति के गेहूँ बराबर लिये जायें और वजन किया जाय तो वजन में चालीस तैंतीस की निष्पत्ति होगी। तुलनात्मक दृष्टि से ड्यूरम में आमिष जातीय पदार्थ की मात्रा वलगारी जाति के गेहूँ से कुछ अधिक रहती है। गेहूँ के रंग के अनुसार ही चपातियों (रोटियों) का और दलिये का रंग होता है।

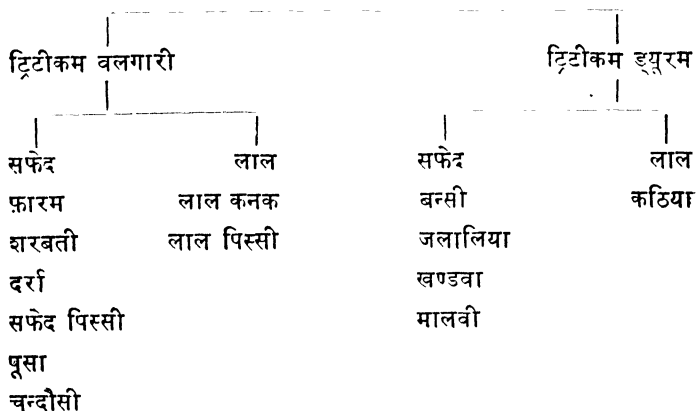
उपर्युक्त जातियों के सिवाय दक्षिण बम्बई की तरफ खापली नाम के गेहूँ होते हैं जो ट्रिटीकम डायकोकम जाति के होते हैं।

व्यवसायिक वर्गीकरण

व्यवसायिक दृष्टि से गेहूँ कठोर और नर्म ऐसे दो प्रकार के होते हैं और व्यवसायी लोग गेहूँ की चमक वगैरह देखकर या दाँत से काटकर इनका अनुमान कर लेते हैं। यहाँपर यह बतला देना अनुचित नहीं होगा कि जलवायु तथा जमीन के हेर-फेर से गेहूँ के उपर्युक्त गुणों में थोड़ा अन्तर पड़ जाता है।

भारत में होनेवाले गेहूँ के व्यवसायिक नाम निम्नलिखित हैं ।

गेहूँ



उपर्युक्त नामों के सिवाय कुछ नाम ऐसे भी हैं जैसे बिहार में लाल को ललका या सफेद को दुधिया अथवा दक्षिण की तरफ पीले को पिलवा या राजस्थान में अच्छे सफेद को दावत खानी (दावत के योग्य) अथवा पकवानी (पकवान के योग्य) इत्यादि । परन्तु ऐसे नाम विशेष महत्व के नहीं होने से सूची अधिक नहीं बढ़ाई गई है ।

ट्रिटीकम वलगारी-फारम—यह शब्द अंग्रेजी शब्द फार्म (Farm) का अपभ्रंश है । इसका अर्थ यह है कि जो नमूना दिखाया गया है वे गेहूँ सरकारी फार्म के हैं या वैसे ही हैं । साफ-सुथरे चले हुए, मोटे दानेवाले गेहूँ बहुधा फारम के नाम से ही चलते हैं ।

शरबती—एक किस्म के दानेवाले साफ और शरबती रंग के ।
दर्दा—जिन गेहूँ में मिश्रण हो और उनमें कुछ टूटे हुए भी हों । उपर्युक्त शब्द पंजाब, दिल्ली और उत्तरप्रदेश के पश्चिमीय भाग में काम में लाये जाते हैं । शरबती नाम तो अन्य प्रान्तों में भी कहीं-कहीं पाया जाता है । सफेद पिस्सी—उत्तर प्रदेश के पूर्वी भाग, मध्य प्रदेश और मध्यभारत में

इस शब्द का उपयोग होता है। चन्दौसी—कलकत्ते के बाज़ार में अच्छे सफेद गेहूँ चंदौसी के नाम से कहे जाते हैं। वहाँ पर समझा जाता है कि ऐसे गेहूँ चंदौसी के आसपास के हैं। इनका मूल्य भी कुछ ऊँचा रहता है। पूसा—साफ-सुथरे सफेद पूसा के बीज से पैदा किए हुए गेहूँ। लाल कनक—पंजाब के कुछ हिस्सों में और लाल पिस्सी उत्तरप्रदेश में पाये जाते हैं।

ट्रिटिकम ड्यूरम—सफेद—जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है इस जाति के गेहूँ कठोर और भारी होते हैं। इनमें आमिष-जातीय पदार्थ विशेष होता है। इनकी रोटी बलगारी गेहूँ की रोटी की अपेक्षा अधिक स्वादिष्ट और मीठी होती है। इनके आटे में अधिक पानी शोषण करने की शक्ति होती है। इनकी सूजी भी उत्तम बनती है। इनमें लोच अधिक होने से सेवियाँ भी ऐसे गेहूँ की अच्छी बनती हैं। इनके प्रतिकूल बात है तो यही कि यदि ये अधिक वर्षावाले स्थानों में लगाए जायं तो इनके उपर्युक्त गुणों में कुछ परिवर्तन हो जाता है। ये सूखे वातावरण वाली काली मिट्टी में अच्छे होते हैं। मध्य प्रदेश, मध्यभारत, बम्बई, हैदराबाद आदि स्थानों में, जहाँ की मिट्टी काली है, वहीं इनकी खेती विशेष होती है। वैज्ञानिक दृष्टि से जितना कार्य बलगारी जाति के गेहूँ के सुधार की ओर किया गया है उतना इसके सुधार की ओर नहीं हुआ है। हाल में होशंगाबाद (मध्यप्रदेश) फार्म पर इनके सुधार का कार्यारम्भ हुआ है। आशा है इनकी भी अच्छी जातियाँ निकलेगी।

बंसी—मोटा कठोर दानेवाला चमकीला। जलालिया—बंसी जैसा परन्तु दाना उससे कुछ मोटा और पीले रंग का होता है। खण्डवा—खण्डवे के आस-पास होनेवाला बंसी जैसा। मालवी—एक किस्म के दानेवाला जिसको एक दानियाँ भी कहते हैं। उपर्युक्त तीनों से इसका दाना कुछ मोटा होता है।

ड्यूरम लाल :—कठिया—छोटे-छोटे दानेवाला लाल गेहूँ।

ट्रिटिकम डायकोकम :—खापली—छोटा लाल, बहुत पतले दाने

वाला । यह बम्बई और कर्नाटक की तरफ होता है ।

जलवायु

गेहूँ के अंकुरित होने, बढ़ने तथा पकने के लिए अलग-अलग तापमान की आवश्यकता होती है । साधारणतः गेहूँ में गर्मी की अपेक्षा सर्दी सहन करने की शक्ति विशेष होती है । पाला गिरने से जब दूसरी फसलें नष्ट हो जाती हैं उस समय भी गेहूँ को हानि नहीं पहुँचती; परन्तु गेहूँ के पकने के समय यदि तापमान एकदम बढ़ जाय और गरम हवा चलने लगे तो गेहूँ पूरे पकने भी नहीं पाते, वे सूख जाते हैं और दाना पतला पड़ जाता है ।

गेहूँ के अंकुरित होने के लिए लगभग २५ शतांश^१ (सेन्टीग्रेड) का तापमान ठीक माना गया है वैसे कम-से-कम तीन-चार शतांश पर भी अंकुरित हो जाते हैं । उधर अत्यधिक तापमान तीस-बत्तीस शतांश ही ठीक हो सकता है । यही कारण है कि जब ठीक सर्दी पड़ने लगती है तब गेहूँ बोये जाते हैं । यदि तापमान उचित अंश तक नीचे नहीं गया होता है तो बीज अंकुरित होकर भूमि के ऊपर निकल आते हैं और पौधे मर जाते हैं । चूँकि ऐसे पौधे कमजोर होते हैं उन्हें दीमक भी काफी हानि पहुँचाती है ।

अंकुरित होने से पूर्ण बाढ़ तक यदि ठण्डा और तरीदार वातावरण

१. मनुष्य के शरीर का तापमान या वायुमंडल का तापमान जो लिया जाता है और समाचार-पत्रों में दिया जाता है वह फेहरन हीट डिग्री का होता है । निम्नलिखित सूत्र से सेंटीग्रेड से फेहरन हीट और फेहरन हीट से सेंटीग्रेड तापमान निकाला जा सकता है ।

$$\frac{\text{डि. सेंटीग्रेड} \times 9}{5} + 32 = \text{डिग्री फेहरन हीट}$$

$$(\text{डि. फेहरन हीट} - 32) \times \frac{5}{9} = \text{डिग्री सेंटीग्रेड}$$

मिल जाय और बाढ़ के दिनों में दो-एक बार वर्षा^१ हो जाय तो पैदावार बहुत अच्छी हो जाती है। पूर्ण बाढ़ के बाद पकने और सब फसल के एकसाथ सूखने के लिए गर्म वातावरण चाहिए। यदि पकने और सूखने के समय सर्दी अधिक दिनों तक रह जाय तो गेहूँ एकसाथ नहीं पकते और बीज कुछ छोटे-बड़े हो जाते हैं।

वर्षा—गेहूँ की खेती वर्षा के आधार पर वहाँ हो सकती है जहाँ की वर्षा २५ से ५० इंच तक हो। २५ से ३० इंच वर्षावाले स्थानों में भी समयानुसार जुताई हो सके तो कुछ गेहूँ हो सकते हैं, परन्तु इससे कम वर्षावाले स्थानों में गेहूँ की खेती बिना सिंचाई के लाभप्रद नहीं होगी। ऐसे स्थानों में दूसरे अनाजों की खेती ही उत्तम होगी।

भूमि और जुताई

गेहूँ के लिए सर्वोत्तम मिट्टी मटियार-दुमट है। उससे उतरती दुमट, बलुआ दुमट और मटियार है। बलुआ में गेहूँ नहीं हो सकते परन्तु यदि अन्नाभाव के कारण गेहूँ पैदा ही करना पड़े तो खाद और सिंचाई के आधार पर उसमें भी पैदा किए जा सकते हैं। जमीन कम-से-कम तीन-चार फुट की गहराई तक एकसी हो तो अच्छा है। दुमट और मटियार दुमट में बरसाती पानी सोखने, उसे संचित रखने तथा आवश्यकतानुसार गेहूँ के पौधों को देने की शक्ति अच्छी होती है। ऐसी मिट्टी की जुताई भी थोड़े परिश्रम से अच्छी हो जाती है जिसकी गेहूँ के लिए विशेष आवश्यकता है। मटियार मिट्टी पहले तो पानी जल्दी सोखती नहीं, क्योंकि बरसात होते ही उसपर तरी जम जाती है और बहुत-सा पानी बह जाता

१. सिंचाई से कितना ही जल दिया जाय परन्तु वर्षा के थोड़े जल का प्रभाव कुछ और ही होता है। वर्षा से पेड़ धूल जाते हैं—उनके ऊपर की धूल धुल जाती है और पत्तों द्वारा सूर्य के प्रकाश में पौधों के भोजनार्थ जो सामग्री बनती है वह क्रिया (Photosynthesis) बढ़ जाती है। इसके सिवाय वातावरण भी ठण्डा हो जाता है।

है। उसके बाद जो धीरे-धीरे सोखा जाता है उसे फसल के उपयोगार्थ जल्दी छोड़ती भी नहीं। इसके सिवाय मिट्टी के भारी होने के कारण उसकी जुताई भी अच्छी नहीं हो सकती और वह महँगी पड़ती है। ऐसी मिट्टी में जड़ों का फैलाव भी ठीक से नहीं हो पाता।

पी. एच.^१ के हिसाब से देखा जाय तो गेहूँ के लिए पूर्ण बुझी हुई मिट्टी अच्छी होती है। इससे कुछ अधिक पी. एच. उतना खराब नहीं होता जितना कम पी. एच.।

साधारणतः गेहूँ के लिए निम्नलिखित जुताई आदर्श हो सकती है :

पहली फसल काटने के बाद ही एक बार हल चलाना बहुत जरूरी है। उस वक्त एक तो मिट्टी कुछ मुलायम रहती है, इसलिए जुताई सरलता से हो जाती है और दूसरी बात यह है कि कीट इत्यादि या उनके कोष मिट्टी में हों तो उसके उलट-पुलट हो जाने से वे बाहर निकल आते हैं—उन्हें पक्षी खा जाते हैं या वे गर्मी से मर जाते हैं। इस जुताई के पश्चात् गर्मी में एकाध बार हल और चला दिया जाय तो ठीक, वरना एक बार बखर अवश्य चला देना चाहिए ताकि ढेले टूट जायें और मिट्टी कुछ हद तक फिर उलट-पुलट हो जाय। उसके बाद जहाँ गोबर का खाद देना हो वहाँ उसे छींटकर बरसात के प्रारम्भ में हल चला देना चाहिए। बरसात में खर पतवार न जमें उसके लिए हल या बखर से जुताई करते रहना चाहिए। यदि बखर का प्रयोग किया जाय तो कम समय और कम खर्च में विशेष काम होगा। बरसात के खतम होने पर एक बार हल से जोतकर बखर, सोहागा या पठार चला देना चाहिए ताकि ढेले टूट जायें

१. Jasny. N. Competition among grains, 1933, पृष्ठ २३० पर जो सारिली दी है उससे ज्ञात होता है कि यदि ६.८ पी. एच. वाली मिट्टी में गेहूँ की उपज १०० भाग मानी जाय तो ४.५, ५.०, ५.६ तथा ७.७ पी. एच. वाली भूमि में यह उपज २६.६, ४१.५, ६२.८ और १२०.६ भाग रही।

और मिट्टी बराबर हो जाय । जहाँ स्प्रिंग दूध हेरो या डिस्क हेरो हों तो बखर की जगह उनसे भी काम लिया जा सकता है ।

जहाँ की भूमि में तरी कम होती है अथवा जहाँ पानी बहुत कम गिरता है, जैसा कि सिंध में, तो वहाँ पर पहले पानी देते हैं और जब भूमि जोतने के योग्य हो जाती है तो उसकी जुताई करते हैं और फिर जल्दी से बो देते हैं ।

यदि खेत दस-पन्द्रह एकड़ के हों और फार्म लगभग ४०० एकड़ या उससे अधिक हों तो वहाँ ट्रैक्टर और उससे चलनेवाले हल या हेरो से खेती करना लाभप्रद होगा ।

मध्य प्रदेश में जबलपुर के आस-पास गेहूँ की खेती एक विशेष ढंग से होती है । वहाँ पर खेतों के चारों ओर मेड़ बाँधकर बरसाती पानी इकट्ठा किया जाता है । अक्टूबर में वह पानी बहा दिया जाता है और बिना किसी प्रकार की जुताई के नली वाले हल से गेहूँ बो दिये जाते हैं । इस प्रकार की खेती से पैदावार कुछ अधिक हो जाती है जिसका कारण पानी की प्रचुर मात्रा तथा घासपात का अभाव है । खेतों में पानी भरा रहने से घासपात जमने नहीं पाते । इसमें एक असुविधा यह है कि पानी के निकास का प्रबन्ध वहीं हो सकता है जहाँ खेत के पास छोटा-मोटा नाला हो या पानी के निकास का ऐसा प्रबन्ध हो जिसमें पड़ोसी के खेत को हानि नहीं पहुँचे ।

इसी तरह से दियारा जमीन में भी बिना जुताई के गेहूँ छींट कर ही बो देते हैं ।

गेहूँ में खाद्य-तत्त्व

फसलों में पाये जाने वाले तत्त्व दो प्रकार के होते हैं । एक वे जिनका उपयोग अधिक मात्रामें होता है और दूसरे वे जिनकी आवश्यकता तो है परन्तु उपयोग बहुत सूक्ष्म मात्रा में होता है । पहले को अंग्रेजी में 'मेजर' और दूसरों को 'मायनर' तत्त्व कहते हैं । निम्नलिखित विश्ले-

परा के अंकों से पाठकों को ज्ञात होगा कि गेहूँ के लिए किन-किन तत्त्वों का उपयोग होता है ।

‘मेजर’^१

	बीज	भूसा
जल	१०%	१०%
नाइट्रोजन	१.६३%	०.५१%
फा. पे. ^२ (P_2O_5)	०.८३%	०.२३%
पो. आ. ^३ (K_2O)	०.५४%	०.६६%
चूना (CaO)	०.०६%	०.२८%
सोडा (Na_2O)	०.०४%	०.६७%
मेग्नेशिया (MgO)	०.२१%	०.१२%
गन्धक (SO_4)	०.१६%	१.७%
हरिन (क्लोरीन)	०.००६%	०.०८%
शेल (SiO_2)	०.०४%	३.२४%

भारत के भिन्न-भिन्न प्रान्तों के कई स्थानों की भूमि का विश्लेषण करके देखा गया तो वह ज्ञात हुआ कि हमारे यहाँ की भूमि में ना. फा. और चूने को छोड़कर सब तत्व काफी मात्रा में हैं । इसमें से चूने की कमी अम्लदार मिट्टी में पाई जाती है जहाँ गेहूँ की खेती कम होती है ।

१. Hand book for Farmers and Dairymen, by Woll, 1914, p. 80. इस पुस्तक में जो अंक दिए हैं वे वॉरिंगटन महोदय के हैं । उनमें जल की मात्रा लगभग १५ शतांश है परन्तु हमारे यहाँ के गेहूँ में जल की मात्रा लगभग १० शतांश रहती है इसलिए उन अंकों से १० शतांश पर गणना करके ये अंक लिये गए हैं ।

२. फॉस्फोरस पेन्टाक्साईड

३. पोटेशियम ऑक्साईड

फा. की कमी कहीं-कहीं है। ना. की कमी न्यूनाधिक मात्रा में सब कहीं पायी जाती है। ना. के खाद से गेहूँ को सब जगह लाभ होता है। ऐसी स्थिति में हमें ना. और फा. का ही विचार करना है।

‘मायनर’^१ प्रति दस लाख भाग बीज में

जस्ता Zinc	१०० ब्रोमीन Bromine	२
निकल Nickel	३५ नेल Iodine	०.००६
लोहा Iron	३१ ताल Arsenic	०.१
माङ्गल Manganese	२४ कोबाल्ट Cobalt	०.०१
टंक Boron	१६ प्लव Flourine	सूक्ष्म
ताम्र Copper	६ वान्दियम Vanadium	,,
स्फट Aluminium	३ सेलेनम Selenium	,,

यहाँ पर यह बतला देना अनुचित नहीं होगा कि आगे फसलों के विश्लेषण के अङ्कों में सिर्फ ना०, फा० पे०, पो० आ० और चूने का ही उल्लेख होगा। गेहूँ के वर्णन में ‘मेजर’, ‘मायनर’ दोनों प्रकार के तत्त्वों के अङ्क इसलिए दिये गए हैं कि पाठकों को यह ज्ञात हो जाय कि फसलों में कितने प्रकार के तत्त्व रहते हैं।

उपर्युक्त अङ्क विदेशी विश्लेषणकर्त्ताओं के लिये गए हैं क्योंकि भारत में गेहूँ का ऐसा विश्लेषण नहीं हुआ है कि जिसमें उपर्युक्त सब तत्त्वों की जांच की हो अथवा यों कहिये कि लेखक ऐसे अङ्क प्राप्त करने में असमर्थ रहा। खैर सब तत्त्वों से यहाँ हमारा अभिप्राय है भी नहीं। हमें तो ना० और फा० पे० की गणना करनी है जिनके लिए भारतीय गेहूँ के अङ्क काफी प्राप्त हैं।

उपर्युक्त सारणी में ना० की मात्रा १.६३% बीज में और ५.१% भूसे में दिखलाई गई है। इस तत्त्व की मात्रा पर गेहूँ की जाति, भूमि के उर्वरापन, खाद्य तथा समयानुसार वर्षा का कुछ असर पड़ता है। सन्

१९३१ से सन् १९३५ तक कुछ प्रयोगों के लिए पूसा में लेखक को गेहूँ में ना० की मात्रा की जाँच करनी पड़ी थी उसमें १.८५%, २.००%, १.९०%, १.९५% और २.१४% बीज में और ०.८२% ०.४५%, ०.२८%, ०.४४%, और ०.५२% भूसे में मिली थी। पहले की औसत १.९७% और दूसरे की ०.५२%, हुई। अन्य भारतीय विश्लेषणकर्त्ताओं के अङ्क भी देखे गये तो करीब-करीब ऐसी मात्राएं अधिकांश जाति के गेहूँ में पाई गईं। कुछ जातियाँ ऐसी भी मिलीं जिनमें एक ओर १.४% तो दूसरी ओर ३.०२%^१ (खापली जाति) ना० पाई गई। स्थान परिवर्तन का असर भी काफी पड़ता है। एक ही जाति के गेहूँ में दिल्ली की अपेक्षा पूसा में ना० की मात्रा कुछ अधिक मिलती है; जहाँ लेखक को पूसा में १.९३, मिली थी वहीं दिल्ली में १.५४%, तक पाई गई। जाति का असर एक ही स्थान में देखा जाय तो पूसा नं० ४ में जहाँ १.९२% थी वहीं पूसा में १११ में २.२३% ना० मिली।^२

फा० पे० के अङ्क उपर्युक्त सारणी में ०.८३% बीज में तथा ०.२३% भूसे में दिखलाये हैं। लेखक के अङ्क आई० पी० १९५ में ०.८५% बीज में और ०.१२ शतांश भूसे में मिले। हमारे यहाँ के गेहूँ के भूसे में फा० पे० कुछ कम ही रहता है। लेंडर महोदय^३ को गेहूँ के भूसे में ०.०६% ही फा० पे० मिला। मध्यप्रदेश के जबलपुर के गेहूँ के भूसे में अय्यर और कायस्थ महोदय^४ को ०.१५% मिला था।

१. Ambeker G. R. 1927. Bombay Bul. N0 146, P. 13.

२. Shaw and KashiRam. Agriculture and Live Stock in India Vol. IV, 1934, P. 466.

३. Indian J. Vet. Science and Animal Husbandry, 1936, P.119-120.

४. Agriculture and Livestock in India, Vol. I, 1931, P. 528

खाद की गणना के लिए हम लेखक के अन्वेषण के अङ्क ही लेते हैं जो दूसरों के अङ्कों से मिलते-जुलते ही हैं ।

गेहूँ की उपज साधारणतः १० मन प्रति एकड़ बरानी में और १५ मन सिंचाईवाले खेतों में ले सकते हैं । वैसे सब अनुकूल स्थितियों में, जैसे कि आगे दिखलाया गया है, ५६*४ मन प्रति एकड़ तक उपज भी पंजाब में मिली है । खाद के आधार पर तो लेखक के प्रयोगों में तीस-तीस मन तक उपज आई है ।

साधारणतः भूसे की उपज गेहूँ की उपज से ड्योढ़ी-दुगुनी होती है । जहाँ गेहूँ की उपज कम होती है वहाँ भूसे की निष्पत्ति १:१*३ से १:१*५ तक पाई जाती है जैसा मध्यप्रदेश के गेहूँ में है । उत्तर प्रदेश में जहाँ उपज कुछ अधिक होती है यह निष्पत्ति १:१*७ से १:१*९ और पंजाब में जहाँ उपज और भी अधिक होती है वहाँ यह निष्पत्ति १:२ या इसमें भी अधिक पड़ती है । जहाँ खाद और सिंचाई से उपज बढ़ाई जाती है वहाँ भी गेहूँ भूसे की निष्पत्ति बढ़ जाती है ।

यदि १० मन गेहूँ की उपज के साथ १५ मन भूसा और १५ मन की उपज के साथ २७ मन भूसा और गेहूँ में १*९७% ना० तथा भूसे में ५*२% या मोटे तौर २*% और ५*% ना० पर गणना की जाय तो दस मन की उपज वाले में २ मन बीज में और ०*७५ मन भूसे में अर्थात् २*७५ मन यानी ११ सेर ना० हुई । उसी भाँति अधिक उपज वाले में ३ और १*३५ मन यानी १७*४ सेर ना० हुई ।

चूँकि गोबर के खाद के ना० का लगभग ५०% शतांश भाग पहले साल काम में आ जाता है इसलिए गोबर का खाद देना है तो इतना देना चाहिए जिससे उपर्युक्त मात्रा से दूनी ना० पहुँचे । इसके लिए ११० मन खाद दस मन बीज की उपज वाले में और लगभग १७५ मन अधिक उपज वाले में डालना होगा । यदि खली का खाद दिया जाय तो लगभग साढ़े पाँच और साढ़े आठ मन खली देनी होगी और यदि एमोनियम सल्फेट दिया जाय तो मन-सवा मन में डेढ़ मन तक देना चाहिए ।

फा० पे० के खाद की गणना गेहूँ में फा० पे० की मात्रा के आधार पर करने की आवश्यकता नहीं। गेहूँ के लिए करीब २० सेर फा० पे० पहुँचे इतना खाद देना चाहिए जो ढाई मन हड्डी के चूर्ण या सिंगल सूपर फॉसफेट के रूप में दिया जा सकता है।

यह तो सूत्रात्मक गणना हुई अब कुछ क्रियात्मक प्रयोगों पर विचार करना चाहिए।

गेहूँ पर खाद के प्रयोग प्रायः उन सब प्रान्तों में जहाँ गेहूँ की खेती विशेष होती है, बहुत हुए हैं। शृंखलित रूप में अनेक प्रयोगों का सारांश वैद्यनाथ^१ महोदय की रिपोर्ट में दिये हैं और सब इण्डियन फार्मिंग में भी निकलते रहते हैं। स्थानाभाव के कारण उन सब अङ्कों का यहाँ विचार करना असम्भव है। उनके तथा लेखक के प्रयोगों के आधार पर निम्नलिखित निर्णय दिए जाते हैं।

गेहूँ की फसल के लिए गोबर का खाद देना हो तो उससे पहले वाली खरीफ की फसल को अधिक खाद दे देना चाहिए। ऐसी फसल बहुधा मक्का की अच्छी होती है। यदि गेहूँ को ही देना पड़े तो वर्षारम्भ के पहले देना उत्तम होगा।

गेहूँ के लिए सन का हरा खाद भी पंजाब और उत्तरप्रदेश में अच्छा सिद्ध हुआ है। इसके लिए वर्षा के प्रारम्भ में सन को बो देना चाहिए और जब वह फसल आठ हफ्ते की हो जाय अथवा जब उसमें फूलों की कलियाँ आने लगें तब गाड़ देना चाहिए। पंजाब में सन की जगह ग्वार की फसल भी काम में लाई जा सकती है। ऐसे खाद का प्रयोग ऐसी जमीन में हो सकता है जहाँ गेहूँ की सिंचाई का अच्छा प्रबन्ध हो। पंजाब में हांसी फार्म पर पाँच साल के औसत अंक देखे गये तो सन से लगभग दो मन उपज बढ़ी। लायलपुर में ग्वार से लगभग तीन मन उपज बढ़ी। उत्तर प्रदेश में अलीगढ़ में खाली सन के खाद से सात मन उपज

१. Vaidhyathan. M. Analysis of manurial experiments in India, Vol. II, 1933.

बढ़ी। जहाँ सन के खाद के साथ सूपर फॉस्फेट (२२.५ सेर फा. पे.) भी दिया गया तो उपज नौ मन तक अधिक आई। १९२७ में तो हरे खाद से लगभग सत्रह मन गेहूँ अधिक उपजे।

कृत्रिम खाद कहीं-कहीं लाभप्रद और कहीं-कहीं आर्थिक दृष्टि से हानिकारक ही सिद्ध हुए। ना० के कृत्रिम खाद के साथ फा० का खाद भी दिया जाय तो उसके मिश्रण से विशेष लाभ होता है। ऐसे मिश्रण में सूपर फॉस्फेट के बदले में हड्डी का महीन चूर्ण भी अच्छा काम देता है। हड्डी का चूरा पुराना हो जाय तो वह और भी अच्छा होता है। चूँकि हड्डी के चूरे में और सिंगल सूपर फॉस्फेट में २० शतांश के करीब फा० पे० रहता है लगभग ढाई मन पहुँचे इतना डालना चाहिए।

मध्य प्रदेश में लभांडी (रायपुर) फार्म (कन्हार मिट्टी) के पाँच साल के प्रयोग के आधार पर बालकड़े महोदय लिखते हैं कि साधारण खेतों में षच्चीस सेर नाइसीफास नं० २ (ना० १८% और फा० पे० १८%) देने से पाँच-छः रुपये प्रति एकड़ तक लाभ हो सकता है। ऐसे खाद से पौने दो मन उपज अधिक आई।

उसी फार्म पर सात साल के प्रयोगों का सारांश यह निकला कि पन्द्रह सेर ना० एरंडी की खली के रूप में देने से उपज लगभग पाँच मन बढ़ी। उतनी ही ना० जब गोबर के खाद के रूप में डाली तो उपज सिर्फ दो मन ही बढ़ी और जब शोरे के खाद द्वारा उतनी ना० पहुँचाई गई तो उपज में तीन मन की वृद्धि हुई। पवारखेड़ा (होशंगाबाद) में ग्यारह साल का औसत देखा गया तो पन्द्रह सेर ना० (खली छः मन) एरंडी की खली के रूप में देने से उपज दो मन बढ़ी। बीस सेर ना० गोबर के खाद (एक सौ मन) के रूप में देने से उपज लगभग डेढ़ मन बढ़ी।

ऐसे कई प्रयोग हो चुके हैं। यहाँ पर तो यह दिखलाने के लिए कि सूत्रात्मक रीति से जो गणना आती है वह क्रियात्मक रूप से पाये गए अंकों के समान है इसलिए कुछ मुख्य प्रयोग दिये हैं।

इतना और कह देना अनुचित नहीं होगा कि कृत्रिम खाद एमोनियम

सलफेट की अपेक्षा खली का खाद उत्तम होगा। इसमें सन्देह नहीं कि पहले दो-चार साल तक एमोनियम सलफेट अधिक उपज दे सकेगा परन्तु बाद में उतना लाभप्रद सिद्ध होना सन्देहजनक है।

एलन महोदय (Sir R. G. Allen) मध्य प्रदेश में गेहूँ के खाद के विषय में लिखते हैं “बरानी खेतों में लाभप्रद खाद गोबर का ही हो सकता है। लगभग एक सौ मन खाद प्रति एकड़ देकर दलहन की फसलों के साथ हेर-फेर करने से लाभप्रद उपज प्राप्त हो सकती है। सिंचाई वाले स्थानों में तीन मन से पाँच मन खली का खाद बोने के पहले डालना उत्तम होगा। बीज में मिलाकर बोने के समय मन सवा मन एमोनियम सलफेट भी डाल सकते हैं।” सूत्रात्मक रीति से प्राप्त किए हुए अंक जो पृष्ठ (१२) में दिये हैं उनसे मिलान करने से ज्ञात होगा कि वे इनसे कितने मिलते हुए हैं।

हेर-फेर और मिश्रण

गेहूँ के साथ दलहन की फसलों का हेर-फेर हो सके तो उत्तम है। यदि ऐसा न हो सके तो कपास जैसी गहरी जड़ वाली फसल भी अच्छी होती है। जहाँ खाद काफी प्राप्त हो सके वहाँ बरसात में खाद देकर मक्का के साथ हेर-फेर हो तो अच्छा है। ऐसी स्थिति में रबी में सिंचाई से गेहूँ लेना होगा।

सिन्ध की तरफ धान के बाद एक जाति के गेहूँ लिये जाते हैं। इसकी उपज तो कम होती है परन्तु गेहूँ के लिए जो खेतों को जोतना पड़ता है तो उससे चावल को लाभ होता है।

मिश्रण के विचार से देखा जाय तो गेहूँ के साथ जौ, चना, मटर, किराओं, सरसों बो देते हैं परन्तु जहाँ तक हो अकेला बोना अच्छा होता है। ऐसा करने से गेहूँ में दूसरे बीजों का मिश्रण नहीं होता।

बीज और बोआई

बीज की प्राप्ति—बहुत-से कृषक अपना ही बीज रखते हैं और कुछ

कृषक समय आने पर खरीदते हैं। ऐसे कृषकों को चाहिए कि जहाँ तक बन सके सरकारी गोदाम से बीज खरीदें। और यदि वहाँ से न मिले तो किसी भरोसे वाले व्यापारी से खरीदें। बहुधा मालगुजार (साहूकार) भी अच्छा बीज कृषकों को देते हैं। और फसल तैयार होने पर सवाया या ड्योढ़ा जो शर्त ठहर जाय उतना वापस लेते हैं।

नम्बरी बीज—केन्द्रीय तथा प्रान्तीय कृषि-विभाग वाले खेतों में खड़ी फसल से चुन करके या सङ्कर क्रिया द्वारा नये गेहूँ तैयार करते रहते हैं। कुछ समय में ऐसे बीज कृषकों को देने इतनी मात्रा में तैयार हो जाते हैं तो फिर वितरण करते हैं। हमारे कृषकों को चाहिए कि कृषि-विभाग वालों से संसर्ग रखें और ज्योंही कोई उत्तम अधिक उपज वाला बीज तैयार हो उनसे प्राप्त करें। यहाँ पर पाठकों की जानकारी के लिए कुछ नम्बरी जातियाँ दी जाती हैं। सम्भव है इस सूची में कोई अच्छी जाति छूट भी गई हो इसलिए कृषकों को कृषि-विभाग वालों से बीज के विषय में अवश्य पूछताछ कर लेनी चाहिए। सिर्फ गेहूँ के लिए ही नहीं बल्कि सब फसलों के लिए उपर्युक्त कथन मान्य होगा।

वर्तमान समय में भिन्न-भिन्न प्रान्तों में मुख्य-मुख्य गेहूँ उत्तम उपज वाले जो बोये जाते हैं, उनकी सूची नीचे दी जाती है। इसी सूची को सम्पूर्ण न मान लें। प्रान्तीय कृषि-विभाग वालों के पास मुख्य-मुख्य स्थानों के लिए मुख्य-मुख्य जातियाँ और भी होंगी जो उनसे जानी जा सकती हैं। यहाँ तो मोटे तौर पर कुछ विख्यात जातियाँ ही दी जाती हैं।

पंजाब—गेहूँ के सुधार के लिए भारतवर्ष में पंजाब बहुत आगे बढ़ा हुआ है। इसलिए ही नहीं कि वहाँ इसकी खेती का क्षेत्रफल अधिक है बल्कि इसलिए कि वहाँ इसके सुधार की सुविधाएँ बहुत हैं। वहाँ पर वैज्ञानिक यदि चाहें तो साल में दो फसलें हो जाती हैं। सर्दी में बोयी जानेवाली फसल मैदानों में और गर्मी में बोयी जानेवाली कांगरा जिले की लोहारू की घाटी में। वहाँ पर मई में बो कर अक्टूबर में फसल काट ली जाती है। जहाँ किसी गेहूँ की उपयोगिता सिद्ध करने में दो साल की

अवधि लगती है वहाँ उपर्युक्त सुविधा के कारण एक ही वर्ष में कार्य हो जाता है ।

पंजाब में वर्तमान समय में निम्नलिखित गेहूँ प्रचलित है—

ए ८—भारी मिट्टी के लिए अच्छे हैं । दौजी (Tillers) बहुत देते हैं । डी. ६—ए ८ से जल्दी पकता है । जहाँ जल्दी फसल लेना हो वहाँ इसे बो सकते हैं वरना पहला ही बोना चाहिए । सी. ५१८—सिचाई वाले खेतों के लिए उत्तम है । सी. ५६१—बरानी खेतों के लिए कृषि-विभाग द्वारा इसका प्रचार बहुत हो रहा है । उपर्युक्त चारों गेहूँ सीक वाले हैं । इनके सिवाय कृषक शरबती तथा अन्य जाति के गेहूँ भी बोते हैं ।

उत्तर प्रदेश—पूर्वीय भागों के लिए पूसा ५२, मध्य के लिए सी. १३, पश्चिमीय भागों के लिए सी. ५१८ और सी. ५११, एन-पी. १२५ और पहाड़ी जिलों के लिए एन० पी० ४ अच्छे सिद्ध हुए हैं । एन. पी. ४ मुं डिया यानी बिना सीक के है । बुन्देलखण्ड के लिए बम्बई बन्सी नं० २२४ और ८०८ अच्छे हैं ।

बिहार—एन. पी. ५२, ७६० और ७६१

बंगाल—एन. पी. ४, ५२ और ७६० ।

बम्बई—निफाड़ नं० ४, निफाड़ नं० ८१ (विजय) नं० २२४ (गुलाबी बन्सी), मोतिया बन्सी १६८, जया ८०१ (बन्सी पली) एन. पी. ७१० ।

मध्यप्रदेश^१—यहाँ पर बन्सी, जलालिया, कठिया इत्यादि ड्यूरम जाति के कठोर गेहूँ बोये जाते हैं । वलगारी जाति के गेहूँ में शरबती ए. ११५ । इसे हरदे से कम हानि पहुँचती है । उपज के विचार से ११५ अच्छा है और जबलपुर के हवेली (Embanked field) के लिए

ए. ०६० शरबती अच्छे हैं। जबलपुर जिले के लिए एन. पी. ४, १२ और ५२ भी अच्छे हैं।

मध्यभारत और राजस्थान^१ —मालवे के बरानी खेतों में एक दानिया और मालवी, राजस्थान तथा बुन्देलखण्ड के लिए सिंचाई वाले खेतों में सी. ५६१ अच्छी उपज देते हैं। बून्दी में बन्सी नं० १६८ अच्छी जाति है। जहाँ हरदा (गेहूँ) का भय हो वहाँ एन० पी० १६५ और एन० पी० ५२ बोना चाहिए।

भटनागर^२ महोदय अपने तीन साल के प्रयोगों के आधार पर लिखते हैं कि एन. पी. ७१८ और एन. पी. ७१० हरदे वाले सालों में स्थायी गेहूँ से बहुत अच्छी पैदावार देते हैं।

इन्डियन एग्रीकलचरल रिसर्च इन्स्टीट्यूट पूसा^३ (देहली) के निकाले हुए गेहूँ। इन्हें पहले पूसा नं० ४, १२ इत्यादि नाम दे रखे थे, परन्तु अब एन. पी. (न्यू पूसा) सांकेतिक चिह्न नम्बर के पहले लगा दिये गये हैं।

एन. पी. ४ मुंडिया—जल्दी पकता है, दौंजी कम देता है। इसके बाल का छिलका सफेद होता है। इसने आस्ट्रेलिया और अफ्रीका में भी ख्याति पाई है। एन.पी. नं० १२—मुंडिया, देरी से पकता है, अधिक दौंजी, बाल का भूसा लाल, दाना नं० ४ से लम्बा। पूसा नं० ५२—इसका दाना नं० ४ से कुछ छोटा और बाल सींक वाले होते हैं। बिहार तथा पूर्वीय उत्तर प्रदेश के लिए उत्तम। एन.पी. नं० ८०—५ करीब-करीब एन.पी. नं० ४ जैसा। पंजाब के पहाड़ी हिस्सों के लिए उत्तम। एन. पी. नं० १११ बिना सींकवाला, जल्दी पकनेवाला। १२५ इनके बाल सींकवाले होते हैं। एन०पी नं० १६५ मुंडिया बाल ब बड़े दानेवाला, सबसे सुन्दर गेहूँ

१. Report of the Institute of Plant Industry, Indore, 1944

२. Bhatnagar M.P., Indian Farming Vol no 2 P. 27 1953.

३. Pal B. P. 1944. The Pusa wheats. The Empire Journal of Experimental Agriculture, Vol. XII, p. 61-73.

है। हरदे वाली व्याधियों से बचने की शक्ति इसमें बहुत अच्छी है।

एन. पी. १ ७१०, नं० ५२ और १६५ की संकर क्रिया द्वारा उपजाया हुआ है। इसमें दोनों जाति के अच्छे गुण हैं।

इसमें कायमा और हरदे से बचने की शक्ति काफी है। उत्तरप्रदेश, मध्यभारत, दिल्ली, राजस्थान, हैदराबाद, गुजरात, सौराष्ट्र, बिहार और बंगाल के लिए उत्तम है। सिंचाई वाले क्षेत्र के लिए बहुत अच्छी जाति है। न० ७१८ इसे ७१० का भाई माना जा रहा है, क्योंकि यह भी नं० ५२ और नं० १६५ के मेल से उपजाया गया है। ७१० से यह कुछ जल्दी पकता है। राजस्थान और मध्य भारत के लिए उत्तम है।

एन. पी. ७६१ उत्तर बिहार के लिए उत्तम है यह ७१६, कोनोसो (Konoso) जापानी तथा एन. पी. ४ के मेल से उपजाया गया है। यद्यपि उपर्युक्त दोनों जल्दी पकने वाले हैं परन्तु ७१६ देरी से पकता है। कायमा और हरदे से बचने की अच्छी शक्ति है। यह जाति पहाड़ी स्थानों के लिए उत्तम है। देरी से पकने के कारण मैदानों के लिए अच्छा नहीं है।

स्मरण रहे गेहूँ सीक (टूंड) वाले या मुण्डो (बिना सीक वाले) ऐसे दो प्रकार के होते हैं। बिना सीक वालों में पशु-पक्षी विशेष हानि पहुंचाते हैं इसलिए आजकल सीक वालों की माँग विशेष है।

बीज की मात्रा—बीज की दर उसकी जाति, किस्म जमीन, वर्षा, बोनो का समय तथा बोनो की रीति पर निर्भर है। जो बीज पिछली फसल के ही सुरक्षित रखे हुए होंगे तो उनकी अंकुर फेंकने की शक्ति अच्छी होगी इसलिए बीज कम लगेंगे। अच्छी उपजाऊ जमीन में भी बीज कम लगेंगे। क्योंकि एक तो जो बोये जायगे सब जम जायँगे और बड़े होने पर उनमें दौंजी विशेष निकलेगी। इसके विपरीत कमजोर भूमि में विशेष बीज डालना होगा ताकि दौंजी का स्थान स्वयं पीधे ही लेवें। जिस

भूमि में दीमक से गेहूँ को विशेष हानि पहुँचने की सम्भावना रहती है और बीज बार-बार बोना पड़ते हैं वहाँ भी बीज की दर बढ़ जायगी। वर्षा का भी बीज की दर पर काफी असर पड़ता है। कम वर्षा हो तो विशेष बीज डालना पड़ता है ताकि तरी की कमी से कमजोर बीज नहीं जमें तो दूसरे तो निकल जायँ। अधिक वर्षा वाले स्थानों में बीज विशेष इसलिए डालना पड़ता है कि अधिक तरी के कारण कुछ बीज सड़ जायँ तो दूसरे अंकुरित हो जायँ। बोने के समय का भी बीज गिराने में विचार करना पड़ता है। यदि किसी कारण विशेष से बोने में विलम्ब हो जाय तो बीज विशेष गिराना होगा क्योंकि उनमें दौजी समय पर और विशेष नहीं निकलेंगी। इन सबके सिवाय बोने की रीति पर भी बीज की मात्रा निर्भर है। यदि छिटकवा बोये जायँ तो अवश्य ज्यादा गिराने होंगे। नारी वाले हल, तिफन या सीड ड्रिल (बोने की मशीन) से बोये जायँ तो कम बोने होंगे।

साधारणतः भारत के अधिकांश स्थानों में लगभग एक मन बीज प्रति एकड़ डाला जाता है; परन्तु कहीं-कहीं कुछ स्थानों में आधा मन तो कहीं-कहीं डेढ़ मन तक भी बोने की प्रथा है।

पूर्वीय पंजाब, जालंधर, लुधियाना इत्यादि जिलों में आधा मन ही बोया जाता है तो दक्षिण पंजाब में लगभग एक मन बोते हैं। उत्तर प्रदेश में पश्चिम से ज्यों-ज्यों पूर्व की ओर बढ़ते हैं बीज की दर भी बढ़ती जाती है। पश्चिमीय उत्तरप्रदेश में पच्चीस-तीस सेर बीज गिरता-है तो पूर्वीय जिलों में इलाहाबाद के निकट लगभग डेढ़ मन बोते हैं और कहीं-कहीं तो इससे भी अधिक। उसके आगे चलकर बिहार और बंगाल में फिर मन-सवा मन प्रति एकड़ का दर आ जाता है। मध्य प्रदेश में जब तिफन से बोया जाता है तो बीस-पच्चीस सेर बोते हैं, परन्तु जब छिटकवा बोते हैं तो मन-सवा मन लग जाता है। वहाँ भी मध्य प्रदेश के मध्य तथा उत्तरीय हिस्सों में विशेष बीज डाला जाता है। मध्यभारत में करीब एक मन की दर से बोते हैं। बम्बई में गुजरात की तरफ लग-

भग सवा मन तो दक्षिण और कर्नाटक की तरफ सिर्फ पन्द्रह-तीस सेर ही डाला जाता है। हैदराबाद में लगभग तीस सेर तो मद्रास में करीब एक मन प्रति एकड़ बोया जाता है।

कहीं-कहीं गेहूँ के साथ जौ, सरसों, चना, मटर, किराओ इत्यादि अन्य अनाज भी बो देते हैं। ऐसी स्थिति में दस-पन्द्रह शतांश के करीब गेहूँ का बीज कम करके पन्द्रह-बीस शतांश बीज दूसरी फसल का डाल सकते हैं। सरसों की कतारें बहुधा गेहूँ की पक्तियों को काटती हुई भी बोते हैं।

बोने का समय—गेहूँ की फसल रबी की फसल कहलाती है और इनके बोने का समय शीतकाल के प्रारम्भ पर निर्भर है। जहाँ शीत कुछ जल्दी प्रारम्भ होती है वहाँ जल्दी बोये जाते हैं। अत्याधिक तापमान करीब सतहत्तर, अठहत्तर डिग्री (फेहरन हीट) आ जाय तब बोना चाहिए। अधिक गर्मी में बोने से अंकुरित होकर बहुत-से बीज मर जाते हैं, क्योंकि अंकुर विशेष गर्मी सहन नहीं कर सकते। उत्तर भारत में ज्यों-ज्यों पूर्व से पश्चिम की ओर जाते हैं बोने का समय आगे बढ़ता जाता है क्योंकि सर्दी भी उसी भाँति आती-जाती है। बिहार तथा पूर्वीय उत्तर प्रदेश में आश्विन-कार्तिक (मध्य अक्टूबर) से प्रारम्भ होकर कार्तिक-मार्गशीर्ष (मध्य नवम्बर) तक बोने का कार्य समाप्त हो जाता है। पूर्वीय पंजाब में कार्तिक-मार्गशीर्ष (अक्टूबर के अन्त से प्रारम्भ होकर नवम्बर के अन्त) तक और पश्चिमीय तथा उत्तर पंजाब में आवश्यकता पड़ने से दिसम्बर (पौष) में भी बो सकते हैं। दक्षिण भारत और बम्बई प्रान्त के कुछ हिस्सों में तो आश्विन (सितम्बर) के अन्त में ही बोने का कार्य प्रारम्भ हो जाता है और मध्य कार्तिक (अक्टूबर) तक समाप्त हो जाता है।

बोने की रीति और दूरी—अगर खेतों में तरी कम हो, जो थोड़ी-सी जमीन खोदने से जानी जा सकती है और सिंचाई का जल प्राप्य हो तो एक बार खेतों में तरी लाकर बखर या हेरो चला देना चाहिए। बोने की

रीति भी पृथक्-पृथक् स्थान में पृथक्-पृथक् है। सबसे उत्तम रीति बीज गिराने की तो सीड ड्रिल द्वारा है। इससे आवश्यकतानुसार गहराई पर और बराबर की दूरी पर बीज गिरते हैं परन्तु यह चीज अभी तक हमारे अधिकांश कृषकों की पहुँच के बाहर है। दूसरी रीति बोने की तिफन या भारी नाई (नली वाले हल) से है। अधिकांश भागों में इसी रीति से बोते हैं। उत्तर प्रदेश के कुछ भागों में हल चला दिया जाता है और हलाई या चांस में बीज गिराते जाते हैं। जब दूसरी हलाई बनती है तो पहली में गिराए हुए बीज मिट्टी में ढक जाते हैं। पंजाब और सिन्ध में कहीं-कहीं छोटकर भी बोते हैं जहाँ पर सिंचाई का काफी प्रबन्ध होता है। दियारा जमीन में भी छोटकर ही बोया जाता है।

दूरी के विचार से चांस में तो गेहूँ घने ही गिराते हैं परन्तु कतारें जमीन की उर्वरा शक्ति अनुसार या सिंचाई की सुविधानुसार नौ इञ्च से एक फुट की दूरी पर होती है। कमजोर भूमि में दूरी कम और उपजाऊ में अधिक होनी चाहिए।

निराई, निंदाई या सोहनी

अन्य फसलों की भाँति गेहूँ में भी घास-पात होते हैं परन्तु बरसाती फसलों में जैसे होते हैं वैसे नहीं होते। इसका खास कारण यह है कि बरसात की बार-बार की जुताई के कारण वे नष्ट हो जाते हैं इसी कारण से गेहूँ में निराई नहीं की जाती, परन्तु यदि समय मिले और की जा सके तो लाभ ही है। इसके सिवाय अधिक उपजाऊ भूमि में या जहाँ ना० का खाद अधिक दिया गया हो वहाँ और सिंचाई वाले खेतों में गेहूँ के पत्तों की बाढ़ बहुत ज्यादा हो जाता है और पौधों के गिरने का भय रहता है बड़ी स्थिति में कुछ पत्तों को इस तरह से काट देना चाहिए जिसमें पौधों की फुनगी अर्थात् धीच की कोंपल (Tops) न कटें। कहीं-कहीं भेड़ तथा पशुओं को चराकर भी पत्ते कटवा दिये जाते हैं। जब फसल में बाल निकल जायं उस वक्त जई और जौ के पौधे या अन्य जाति के गेहूँ के पौधे

मिलें तो उन्हें निकाल डालना चाहिए वरना बीज शुद्ध नहीं रहेंगे। इनके सिवाय कायमा (Smut) या अन्य किसी व्याधि वाले पौधे नजर आयें तो उन्हें भी उखाड़ कर नष्ट कर देना चाहिए। घास-पात में गेहूँ में अक्सर बथुआ निकल आता है उसे निकालकर सब्जी के काम ले आना चाहिए। अन्य जाति के पौधे हों तो उन्हें भी निकालते रहना चाहिए।

निराई के समय जमीन की पपड़ी खुरपी से तोड़ने का भी ध्यान रखना चाहिए, खास करके सिचाई वाले खेतों में जहाँ पपड़ी पड़ जाती है। उसे तोड़ते रहने से पानी की कुछ बचत होती है। जो जल केशाकर्ण (Capillary action) शक्ति से ऊपर आकर वायु-मण्डल में भाप के रूप में चला जाता है वह स्वेच्छानुसार उड़ने नहीं पाता।

सिचाई

गेहूँ की फसल के लिए बीस इंच से कम वर्षा वाले स्थान ठीक नहीं होते। ऐसे स्थानों में सिचाई करनी ही होगी। बीस इंच से अधिक वर्षा वाले स्थानों में भी सिचाई से पैदावार बढ़ाई जा सकती है, परन्तु जहाँ पचास-साठ इंच से अधिक वर्षा होती है वहाँ विशेष लाभ की सम्भावना नहीं।

साधारणतः गेहूँ के लिए दो-तीन सिचाई काफी होती हैं, परन्तु यदि फूलने या पकने के समय जोर की हवा चल जाय जो जमीन की तरी को उड़ा ले जाती है तो वहाँ एकाध सिचाई अधिक देनी होगी। सिचाई द्वारा लगभग नौ-दस इंच पानी पहुँच जाना चाहिए जो प्रति सिचाई में तीन साढ़े तीन इंच पड़ेगा। दस इंच से अधिक पानी देने से पानी के प्रमाणा-नुसार उपज नहीं बढ़ती^१। भारतवर्ष में सिचाई से उपज ड्योढ़ी हो जाती है वैसे राजस्थान व बम्बई की तरफ दुगनी भी हो जाती है।

१. Widstoe 1904 Principles of Irrigation Practices. विडस्ट साहब ने लगभग ५, ७.५, १०, १५, २५ और ४० इंच तक पानी देकर देखा तो पैदावार लगभग २६, ३०, ३२, ३३, ३४ और ३६ मन प्रति एकड़ तक पड़ी।

गेहूँ के शत्रु और रक्षा के उपाय—मनुष्य तथा पशुओं से बचाने के लिए रखवाला या अवेध घेरा लगाना होगा। चूहे जैसे छोटे पशुओं से बचाने के लिए विष का प्रयोग ही हो सकता है। बोते समय चूहे गेहूँ खोदकर खा जाते हैं और जब पकने आते हैं तो पौधों को काटकर नीचे गिरा देते हैं और दाना खा जाते हैं। चूहों को मारने का उत्तम विष मैदा, चीनी और बोरियम कार्बोनेट है। तीन हिस्सा मैदा या आटा लेकर उसमें एक हिस्सा बोरियम कार्बोनेट और थोड़ा-सा गुड़ या चीनी मिलाकर पानी से गीला करके गोलियाँ बना ली जायं और उन गोलियों को चूहों के बिल के मुँह पर रात को रख दिया जाय तो वे खाकर मर जाते हैं। इतना ध्यान रहे कि पशु कहीं इन्हें अधिक मात्रा में नहीं खा जायं।

जब गेहूँ कुछ बड़े होते हैं तो खरगोश पौधों को खा जाते हैं। ये अधिक संख्या में कहीं-कहीं ही पाये जाते हैं। जब गेहूँ पकने लगते हैं तो पक्षी हानि पहुँचाते हैं। ऐसे पक्षियों से बचाव रखवाले द्वारा ही हो सकता है। साधारणतः सुबह और संध्या को पक्षी विशेष हानि पहुँचाते हैं। उस वक्त रखवाला होना आवश्यक है। जब पककर सूखने लगते हैं तब पक्षी तो कम हो जाते हैं परन्तु चूहे कहीं-कहीं काफी हानि पहुँचाते हैं।

कीट

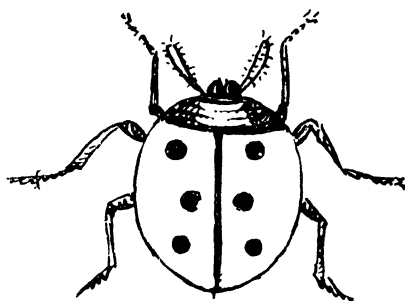
हरे पौधों को हानि पहुँचाने वाले कीट में दीमक और तितली की जाति का एक पतंग होता है।

दीमक—गेहूँ के पौधे ज्योंही जमीन से कुछ ऊपर निकलते हैं, तभी से दीमक उन्हें काटना शुरू कर देती है और पौधे सूख जाते हैं। कभी-कभी तो यह इतनी बुरी तरह से पीछे पड़ती है कि कतारें-की-कतारें बरबाद कर देती है। इससे बचाने का यही उपाय है कि एक तो जब सर्दी काफी पड़ने लगे तब बीज बोये जायं और दूसरा जहाँ सिंचाई का प्रवन्ध हो वहाँ सिंचाई कर दी जाय तो बहुत कुछ बचाव हो जाता है।

जहाँ पर दीमक का जोर विशेष हो वहाँ हरे खाद का उपयोग कम किया जाय । स्मरण रहे स्वस्थ पौधों को दीमक भी उतनी हानि नहीं पहुँचाती जितनी कमजोर को, इसलिए गेहूँ अच्छी तरह से तैयार किये हुए उपजाऊ खेत में बोना चाहिए । यदि निकट में कहीं पर दीमक का महल दिखाई दे तो उसे खुदवाकर उसमें रहनेवाली रानी को मरवा डालना चाहिए ताकि दीमक की संख्या बढ़ने न पावे ।

दूसरा कीट एक पतंग का बालकीट होता है जो पौधे की डण्डी में जड़ के निकट लग जाता है और पौधे काट देता है । फल यह होता है कि बाल में दाना नहीं होता और समय से पहले वह सफेद हो जाता है । पतंग सूखे घास के रंग का होता है । मादा जमीन के निकट वाले पत्तों पर अंडे देती है जिनसे बालकीट निकलकर डण्डी में प्रवेश कर जाता है और वहीं कोप भी बनाता है । इससे विशेष हानि होती दिखाई दे तो सूखे गेहूँ को उखाड़कर बालकीट का नाश कर देना चाहिए ।

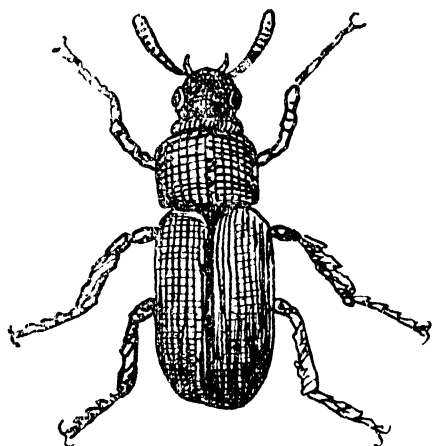
इनके सिवाय गेहूँ में लाही या मोला (Aphis) भी लग जाता है । ये कीट बाल का रस चूसते हैं जिससे दाना ठीक से नहीं बन पाता । बहुधा यह देखा गया है कि जहाँ ये कीट होते हैं वहाँ इनका शत्रु कीट सोनपांखरा, (पीले रंग का गोबरीले कीट की जाति का एक कीट होता है जिसकी पीठ पर काले-काले छः धब्बे होते हैं) भी आ जाता है । इसके बालकीट लाही को खा जाते हैं ।



सोन पांखरा

गोदाम में हानि पहुँचानेवाले कीट और उनसे बचाने के उपाय—
गोदाम में विशेष हानि पहुँचानेवाले दो-तीन प्रकार के घुन होते हैं । एक

खपरा, दूसरा बिना सूंड वाला धुन, और तीसरा सूंडवाला धुन ।



खपरा

खपरा (*Trago-derma granaria*)—

इस कीट से गहूँ के कोठों में गेहूँ के ऊपरी तह को ही विशेष हानि पहुँचती है । ऊपर के पाँच-छः इंच से लेकर एक फुट तक के गेहूँ का तो यह चूर्ण ही बना देता है । इसका तरुण कीट लगभग $\frac{1}{2}$ इंच लम्बा होता है ।

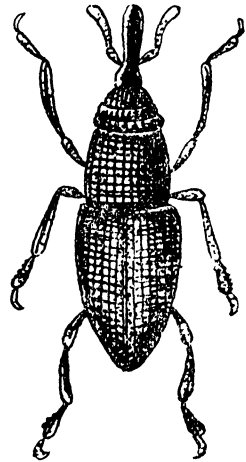
कार्तिक (अक्टूबर) से लेकर

वैशाख-ज्येष्ठ (अप्रैल-मई) तक अपना जीवनकाल बालकीट के रूप में काटते हैं । बाद में रूपान्तर कर तरुण कीट बन जाते हैं और अगले चार-पाँच महीने में इनकी चार-पाँच पीढ़ियाँ हो जाती हैं । एक-एक मादा सौ-सवा सौ तक अण्डे देती है ।

बिना सूंडवाला धुन (*Rhizopertha dominica*)—यह कीट $\frac{1}{2}$ इंच लम्बा भूरे या काले रंग का होता । यह गेहूँ, जव, ज्वार, मक्का, चावल में पाया जाता है । गर्मी आते ही यह कर्म-रत हो जाता है । साल भर में इसकी चार-पाँच पीढ़ियाँ हो जाती । शीतकाल बालकीट के रूप में ही पूरा होता है । यह सूखे फल, काष्ठादिक औषधियों तथा कागज में भी पाया जाता है ।

सूंडवाला धुन—(*Silophilus oryza*)—इसका मुँह सूंडके आकार का होता है । यह कीट लगभग $\frac{1}{2}$ इंच लम्बा होता है । गेहूँ, ज्वार, मक्का, चावल, को बहुत हानि पहुँचाता है । तरुण कीट सर्दी के दिनों में

हानि पहुंचाते रहते हैं। दूसरी और तीसरी प्रकार के कीट अनाज के अन्दर से गूदा खाकर बीज को खोखला कर देते हैं। पहले की भाँति चूरा नहीं बनाते और उसकी भाँति सिर्फ ऊपरी तह को ही नहीं बल्कि सभी तह में पाये जाते हैं। इन तीन में पहला कीट काफी तगड़ा, दूसरा बीच में से पतला और तीसरा सूंड वाला होता है।



सूंडवाला धुन

इन तीनों कीटों से बचाने के लिए गोदाम कीट रहित करने चाहिए तथा औषधियाँ भी काम में लानी चाहिए, जिनका वर्णन आगे दिया है।

जब गेहूँ थोड़े होते हैं तो टीन या लोहे की कोठियों में भरे जाते हैं। उससे अधिक हुए तो मिट्टी की कोठी या बाँस की छड़ की या तूवर कपास की डंडियों की बनी हुई बड़ी-बड़ी कोठियों को छाब लीपकर उनमें भरते हैं। जब और भी विशेष होते हैं तो जमीन में कच्चे, पक्के या सीमेंट के बने हुए गढ़ों में भी भरते हैं। कहीं-कहीं बहुत बड़ा कपड़े का थैला बनाकर उसमें भर देते हैं जिसे ठेका कहते हैं। बहुधा कमरों में डेरी लगाकर उन्हें बन्द करके भी रखते हैं। कहीं-कहीं बोरो में भरकर बोरे कमरे या वराडे में थप्पी लगाकर रख दिये जाते हैं।

गेहूँ उपर्युक्त रीति से कैसे ही भरे जायें एक बात का विचार अवश्य रखना चाहिए कि वे खूब सूखे हुए हों। गर्मी के दिनों में अच्छी धूप दिखाये हुए होने से वे सूख जाते हैं और उनपर धुन या खपरे या उनके अंडे हों तो वे मर जाते हैं। गर्मी के दिनों में सुखाए हुए गेहूँ में लगभग ६ से १२ शतांश तक जल रह सकता है। इससे अधिक नहीं रहना चाहिए। सुखाने के पश्चात् जब टीन या कोठियों में भरे जायें तो भरने

के पहले उन बर्तनों को भी काफी धूप दिखा देनी चाहिए ताकि उनमें कीट या उनके अंडे हों तो वे मर जायं । भरने के बाद ढक्कन को बन्द करके मोम या गीली चिकनी मिट्टी से बन्द कर देना चाहिए ताकि हवा न जा सके । यदि ठीक से बन्द न होंगे तो बरसात की तरीवाली हवा उनमें घुस जायगी जिससे गेहूँ में नमी आ जायगी और यदि कुछ अंडे या कीट गेहूँ के साथ रह गये होंगे तो उनके कीट अपनी वंश-वृद्धि कर सब गेहूँ बिगाड़ देंगे ।

जब मिट्टी की कोठियों में भरे जायँ तो कोठियों को खूब साफ करके गेहूँ भरने चाहिएँ और ऊपर से मुँह अच्छी तरह से बन्द कर देना चाहिए । जब बाँस या रहर की टहनियों की कोठियों में भरे जायँ तो गेहूँ के आसपास भूसे की काफी तह लगाकर भरना चाहिए । इससे भी नमी की रक्कावट होती है ।

खत्तियों में भरे जायँ तो उनमें भी चारों ओर भूसे की तह लगाकर भरे जायँ तो गेहूँ अच्छे रहते हैं । पक्की सीमेन्ट की खत्तियों में भूसे की आवश्यकता नहीं है ; लेकिन मुँह उनके भी ऐसे बन्द करने चाहिएँ जिसमें बरसाती नमी वाली हवा गेहूँ में प्रवेश नहीं कर सके ।

जब कोठों में भरे जायँ तो कोठों को खूब अच्छी तरह से साफ करके उनमें सिगड़ियाँ जला देनी चाहिए ताकि गर्मी से कीट मर जायँ । बाद में भर करके दरवाजे को ऐसा बन्द कर दिया जाय जिसमें क्रिधर से भी हवा नहीं जा सके । दरवाजे की दरारें चिकनी मिट्टी से बन्द की जा सकती हैं । जो गेहूँ बोरो में भरकर रक्खे जाते हैं उन्हें भी खूब सुखाकर रखना चाहिए । बरसात में खुली हवा से उन्हें भी बचाना चाहिए । बड़ी-बड़ी मंडियों में थैलों की थप्पियाँ सड़कों पर ही लगा देते हैं, और तो ठीक भारत की राजधानी दिल्ली में बहुधा ऐसा देखा जाता है कि उन-पर बरसाती पानी गिर जाता है उससे बचाने के लिए कभी-कभी टार-पोलीन ढक देते हैं । अक्सर ऐसे बोरो में से अंकुरित गेहूँ निकले हैं । ऐसी अवहेलना से गेहूँ और स्वास्थ्य दोनों बिगड़ते हैं ।

इनके सिवाय थोड़े-बहुत गेहूँ राख से मिलाकर भी अच्छी तरह से रक्खे जा सकते हैं। इसका खास उद्देश्य शायद गेहूँ को सूखे रखने का है। काम में लाते वक्त उन्हें धो डालते हैं।

बीज बोने के लिए गेहूँ सुरक्षित रखना हो तो कार्बन-बाई-सल्फाईड (Carbon-bi-sulphide) नाम की औषधि उत्तम है। यह ऐसा पदार्थ है कि जल्दी आग पकड़ लेता है सो इसके पास रोशनी नहीं ले जानी चाहिए। एक हजार घन फुट गेहूँ में ढाई सेर औषधि डालनी चाहिए। डालने के पश्चात् कोठी का मुँह बन्द कर दो और दो-तीन दिन बाद थोड़ी देर खोलकर फिर बन्द कर दो।

सूक्ष्म जन्तु द्वारा होनेवाली व्याधियाँ—सूक्ष्म जन्तु द्वारा होनेवाली व्याधियाँ में फंगस (फफूँद) की व्याधियाँ विशेष हानि पहुँचाती हैं जिनमें तीन मुख्य हैं (१) हरदा या गेरू (Rusts), (२) बन्टा (Bunt or stinging Smut) और (३) कायमा (Smut)।

पहली व्याधि लगने से गेहूँ का दाना बहुत पतला पड़ जाता है। दूसरी से गेहूँ के बाल के कुछ बीज में मैदा न बनकर काला बदबूदार पदार्थ बन जाता है और तीसरी से गेहूँ के पौधे के बाल में दाना न बनकर काला धूल के समान उड़नेवाला पदार्थ बन जाता है।

हरदा, कङ्गी या गेरू—यह तीन प्रकार का होता है, नारंगी, पीला और काला। इनसे पौधों के पत्ते, डण्डी और बाल पर उपर्युक्त रंग के धब्बे पड़ जाते हैं। इनमें से नारंगी रंग का हरदा सबसे पहले दिसम्बर जनवरी में विशेषतः पत्तों पर हो जाता है। दूसरी जाति का हरदा पहले से कुछ दिन बाद लगता है। इसका असर पत्ते, डंडियों और बाल तीनों पर होता है। गेहूँ के पकते समय तीसरी जाति का हरदा लगता है और विशेषतः डंडियों पर इसके काले-काले धब्बे पाये जाते हैं। उत्तर प्रदेश तथा बिहार और मध्य प्रदेश तथा मध्यभारत में पहली दो जाति के हरदे पाये जाते हैं। बम्बई तथा पंजाब में काला हरदा पाया जाता है।

हरदे की बीमारी के बीज (Spores) एक स्थान से दूसरे स्थान

पर हवा में उड़कर पहुंचते हैं इसलिए इनसे लोहा लेना ज़रा कठिन है। डाक्टर मेहता कई साल के प्रयोग से इस निर्णय पर पहुँचे कि गर्मी के दिनों में मैदान में इसके स्पोर्स का नाश हो जाता है, परन्तु पहाड़ों पर जहाँ गेहूँ की दौजी (Volunteer plants^१) फूट जाती है उनपर ये अपना पोषण कर जब मैदानों में गेहूँ बड़े हो जाते हैं तो वहाँ पहुँच जाते हैं। यदि पहाड़ों पर ऐसे गेहूँ न होने दिए जायं अथवा वहाँ पर ऐसे गेहूँ बोये जायं जिनपर इस व्याधि का असर नहीं हो तो यह व्याधि भारत से समूल नष्ट हो सकती है। इस व्याधि का अधिक फैलाव उन दिनों में बहुत हो जाया है जब वातावरण में तरी विशेष रहती है या आसमान बादलों से घिरा रहता है। सिंचाई के साथ-ही-साथ यदि बादल भी पहुँच जायं तो व्याधि और भी जल्दी बढ़ जाती है। आक्रमण कैसे भी हो यह मानना होगा कि अभी तक इससे मुक्ति की राह नहीं मिली है। जहाँ तक हो ऐसे गेहूँ बोना चाहिए जिनपर इसका आक्रमण कम हो। एन० पी० १६५, ५२, १११, ७१०, ७१८ ऐसे गेहूँ हैं जिन पर हरदे का असर बहुत कम पड़ता है।

बन्टा (Bunt) या (Stinging Smut)—इस व्याधि में गेहूँ का दाना ऊपर से तो अच्छा मालूम पड़ता है क्योंकि छिलका वैसा ही बना रहकर मैदे की जगह काला-काला बदबूदार पदार्थ बन जाता है। जब व्याधि अधिक हो जाती है तो ध्यान से देखने से गेहूँ का आधा भाग काला नजर आता है। बहुधा ऐसा होता है कि एक ही बाल में कुछ ही दानों पर यह व्याधि होती है। यदि अच्छे गेहूँ में व्याधि वाले गेहूँ मिले रहें तो रोट्टी का स्वाद खराब हो जाता है। इससे बचाने का उपाय यह है कि बीज पर फार्मेलिन या कापर कार्बोनेट (Copper carbonate) का प्रयोग करके बोना चाहिए। जब फार्मेलिन काम में लाया

१. गेहूँ के काट लेने के बाद पौधों में से फूट निकलनेवाले पौधे अथवा अपने आप उपजने वाले पौधे।

जाय तो लगभग ८० मन गेहूँ के लिए आधा सेर फार्मेलिन और सवा मन पानी लगता है। औषधि को पानी में मिलाकर गेहूँ को फैला करके उन पर महीन फुहार वाली मशीन से छिड़क देना चाहिए ताकि सब गेहूँ भीग जायं। बाद में दो घंटे के लिए गीले बोरो से ढककर रख देना चाहिए। ऐसा करने से बंट के बीज मर जाते हैं। यदि ऐसा नहीं कर सके तो प्रति बारह मन गेहूँ के साथ एक सेर कापर कार्बोनेट का चूर्ण मिलाकर बोना चाहिए। चूर्ण मिलाते समय नाक और मुँह पर कपड़ा रख लेना चाहिए क्योंकि यह औषधि विपैली होती है।

कायमा, कङ्गी या कङ्गियारी (Smut)—इस व्याधि में गेहूँ के बाल में दाना न बनकर काला बुरादा बन जाता है और जबतक बाल नहीं पकते तबतक पहचान भी नहीं सकते। खैरियत यह है कि यह व्याधि विशेष नहीं होती। फिर भी किसी-किसी स्थान में काफी हो जाती है। इससे छुटकारा पाने की दो युक्तियाँ हैं। एक तो यह कि दूसरी फसल बोने के लिए उन खेतों में गेहूँ बोये जायें जिनमें यह व्याधि नहीं हुई हो। दूसरी युक्ति यह है कि गर्मी के दिनों में सुबह में चार घंटे तक गेहूँ को भिगोकर दोपहर को चार घंटे तक धूप में सुखा लेना चाहिए। बाद में बोने तक सुरक्षित रक्खा जाय। वैसे एन० पी० ११४ पर कायमे का असर नहीं होता। नं० १६५ और १२० पर कम असर होता है।

फसल की तैयारी

गेहूँ की फसल उस वक्त तैयार मानी जाती है जब कि पत्ते सूख जायं, बाल के नीचे वाली डण्डी पीली पड़ जाय और मोड़ने से मुड़ जाय परन्तु टूटकर अलग न हो। कहने का तात्पर्य यह है कि पौधे बिल्कुल सूखने न पावें वरना काटते समय बहुत से गेहूँ भड़ जायंगे। काटने के लिए भी प्रातःकाल में जल्दी ही काटना प्रारम्भ कर देना चाहिए, जिसमें रात की ओस में पौधे नमी लिये हुए हों वरना गेहूँ बहुत भड़ेंगे। इसलिए कहीं-कहीं तो जहाँ ठेके से कटवाते हैं रात को भी गेहूँ काटे जाते हैं। बादलों वाला दिन भी काटने के लिए उत्तम होता है।

जिस प्रकार भिन्न-भिन्न प्रान्तों में बोने का समय आगे-पीछे होता है उसी भाँति काटने का समय भी है। जहाँ गर्मी विशेष हुई कि फसल पकने लगती है और यदि गर्मी के साथ गर्म हवा भी चल जाय तो कच्चे गेहूँ ही बिना पूर्ण बाढ़ पाये सूख जाते हैं और दाना पुष्ट नहीं होने पाता।

गेहूँ की कटाई^१ दक्षिण भारत में जनवरी-फरवरी (माघ-फाल्गुन) में हो जाती है। मध्य प्रदेश, मध्य भारत, बिहार और पूर्वीय उत्तर प्रदेश में चैत्र (मार्च) से प्रारम्भ होकर वैशाख मध्य (अप्रैल) तक फसले कट जाती हैं। पश्चिमीय उत्तर प्रदेश में और पूर्वीय पंजाब में वैशाख-ज्येष्ठ (अप्रैल-मई) में कटती के दिन हैं। फिर ज्यों-ज्यों उत्तर पश्चिम की ओर जाते हैं कुछ-कुछ विलम्ब होता जाता है। लायलपुर वगैरह में ज्येष्ठ (मई) के अन्त तक तथा पहाड़ों में आषाढ़ (जून) तक भी गेहूँ की फसल कटती रहती है। बलूचिस्तान में तो जुलाई तक भी काटी जाती है। कांगड़ा की घाटी में ज्येष्ठ (मई) में बोकर कार्तिक (अक्टूबर) में काट लेते हैं।

१. पाठकों के ज्ञानार्थ विदेशों में गेहूँ की फसल कब तैयार होती है इसका वर्णन भी यहाँ दिया जाता है। निम्नलिखित ध्योरे से ज्ञात होगा कि यदि समस्त भूमंडल का विचार किया जाय तो गेहूँ प्रति मास कटते रहते हैं। यही कारण है कि गेहूँ के मूल्य में यकायक विशेष घटती-बढ़ती नहीं होती।

जनवरी—आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, चीली।

फरवरी-मार्च—मिन्न और भारत।

अप्रैल—मिन्न, ईरान और भारत।

मई—मध्य एशिया—चीन, जापान और भारत।

जून—दक्षिण यूरोप, संयुक्तराष्ट्र, भारत और केनेडा।

फसल उठाने की रीति—बहुधा फसल हँसुए से काटी जाती है। जब गेहूँ की ऊँचाई पाँच फुट या उससे अधिक हो जाती है तो आधे पौधे तक काटकर शेष को खेत में छोड़ देते हैं, जिन्हें पशु खा लेते हैं और बाद में बचे-खुचे जला दिये जाते हैं। जब पौधे छोटे होते हैं तो जमीन से दो-तीन इंच की ऊँचाई से ही काटते हैं।

कहीं-कहीं बम्बई, हैदराबाद, मध्य प्रदेश में जहाँ-जहाँ गेहूँ के पौधे छोटे होते हैं तो उन्हें उखाड़ लेते हैं और बाद में जड़ें काटकर फेंक देते हैं। ऐसे गेहूँ में मिट्टी विशेष आ जाती है। जहाँ हँसुए से काटते हैं वहाँ के गेहूँ में मिट्टी बहुत कम होती है। यही कारण है कि जाँच करने पर बम्बई, हैदराबाद तथा मध्य प्रदेश के गेहूँ में ७ से ९ शतांश तक कूड़ा पाया गया जब कि पंजाब के गेहूँ में अधिक-से-अधिक १५ शतांश ही मिला।

गेहूँ कुछ हरी स्थिति में भले ही काटे जायें फिर भी कुछ बाल तो गिर ही जाते हैं जिनका चुनाव ठेके से होता है। ऐसे गेहूँ का आधा या तीसरा हिस्सा चुननेवालों को दे दिया जाता है।

गेहूँ की कटती छोटे-छोटे कृषकों के यहाँ उनके कुटुम्ब के लोग ही कर लेते हैं। अधिक खेती वालों के यहाँ मजदूरी तथा ठेके से काम होता है। जहाँ खेत बड़े-बड़े और समथल हों, ट्रैक्टर और काटने तथा पूले बाँधनेवाली मशीन का प्रयोग भी हो सकता है। इस मशीन में ऐसा प्रबंध रहता है कि गेहूँ कटकर इकट्ठे हो जाते हैं और जब एक प्रमाणित

जुलाई—मध्य यूरोप—दक्षिण रूस, संयुक्त राष्ट्र और उत्तरीय कनाडा।

अगस्त—मध्य रूस, ब्रिटिश द्वीप समूह, संयुक्त राष्ट्र और दक्षिण कनाडा।

सितम्बर-अक्टूबर—उत्तरीय रूस तथा उत्तर यूरोप।

नवम्बर—पेरू, दक्षिण अफ्रिका, अर्जेंटाईन।

दिसम्बर—अर्जेंटाईन, ब्राह्म प्रदेश।

मात्रा में हो जाते हैं तो एक ओर से एक रस्सी और सुआ आकर पूला बाँध देते हैं और मशीन पूले को पीछे की ओर फेंक देती है। जिन खेतों में गेहूँ अधिक गिर जाते हैं (Lodged) या जिस जाति के गेहूँ काटते वक़्त बहुत भड़ते हों वहाँ मशीन का उपयोग ठीक नहीं होता। मशीनें ऐसी भी होती हैं जिनसे गेहूँ की कटनी, दौनी और उड़ावन का काम एक साथ चलता है। ऐसी मशीनें गेहूँ के बोरे भी भर देती हैं। एक मजदूर बोरे सीने के लिए रखना होता है।

(१) ऐसी मशीनें गेहूँ को काफी ऊपर से काटती हैं इसलिए भूसा बहुत-सा खराब जाता है। अन्य देशों में भूसा बरबाद बिया जा सकता है, खेतों में भी छोड़ दिया जा सकता है अथवा उसका काम्पोस्ट भी बनाया जा सकता है परन्तु हमें तो पशुओं को खिलाने के लिए भूसे की आवश्यकता होती है।

(२) यदि मशीन को नीचे उतारकर काटा जाय तो गेहूँ भूसे की निष्पत्ति इतनी बढ़ जाती है कि मशीन बन्द (choke) हो जाती है।

(३) भूसा जैसा बैलों के पैर से कुचलने पर महीन होता है वैसा मशीन में नहीं होता।

यदि ऐसी मशीनों में इन तीन बातों का सुधार कर दिया जाय और खेत बड़े-बड़े बनाये जा सकें तो हमारे भारत के लिए भी उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं।

यदि मजदूरों से गेहूँ कटवाया जाय तो उनकी योग्यतानुसार पाँच से आठ मजदूर तक एक एकड़ खेत को एक दिन में काट देते हैं। पूले बाँधने के लिए मूँज की रस्सी, जगली खजूर के चीरे हुए पत्ते, पलास के जड़ की छाल, रहर की पतली टहनियाँ, हरे बाँस की चीरी हुई छड़ें इत्यादि जो जिस स्थान में मिलती हैं काम में लाई जाती हैं। कहीं-कहीं गेहूँ से ही बाँध देते हैं तो कहीं-कहीं खेत में के हरे घास-पात से ही काम चलाते हैं। जहाँ खरपतवार काम में लाये जाते हैं वहाँ गेहूँ में उनके बीज बहुत मिल जाते हैं।

काटने के पश्चात् गेहूँ खलियान में लाया जाता है जहाँ दाना भूसा अलग किया जाता है। खलियान के लिए मिट्टी पर पानी छिड़ककर उस पर बैल चलाते हैं या उसे रोलर से दबा देते हैं ताकि वह ठीक से जम जाय। बाद में मिट्टी और गोबर के मिश्रण से उस जगह को लीप देते हैं और जब वह जगह सूख जाती है तो उसपर गेहूँ फैला देते हैं। भारत के अधिकांश भागों में बैलों को गोल चक्कर में घुमाकर उनके पैरों से कुचलवाकर दाना अलग किया जाता है। ऐसा करने से भूसा टूटकर महीन हो जाता है और पशुओं को खिलाने योग्य बन जाता है। कहीं-कहीं भैंसे, गधे आदि भी चलाये जाते हैं। कुछ स्थान ऐसे भी हैं जहाँ रोलर भी चला देते हैं। जब गेहूँ कम होते हैं तो डण्डे से पीटकर भी दाना छुड़ा लेते हैं। दौनी के लिए दोपहर के बाद का समय अच्छा होता है जब धूप से गेहूँ के डण्डल सूखकर टूटने-जैसे हो जाते हैं। रात की सर्दी खा जाने से सुबह में भूसा जल्दी टूटता नहीं। साधारणतः दो दिन दोपहर को बेली चलाने से एक बार का भरा हुआ खला तैयार हो जाता है। दो एकड़ की उपज जिसमें तीस-चालीस मन गेहूँ होंगे आठ-दस बैल दो दोपहरी को चलाना पड़ते हैं। इसके लिए दो मजदूर बैलों को हांकने वाले होंगे और एक भूसे को उलट-पुलट करने के लिए लगेगा। कहीं-कहीं नौरंग नाम का एक यंत्र भी चलाया जाता है जिसमें दाते वाले बहुत-से तवे लगे रहते हैं जिनसे भूसा टूट जाता है और दाना भी अलग हो जाता है।

उड़ावन—जब दाना छूट जाता है तो हवा में उड़ाकर दाना भूसा अलग-अलग कर देते हैं। इस काम के लिए एक व्यक्ति तीन-चार फुट ऊँची तिपाई पर खड़ा होकर सूप या टोकरे से भूसा और दाना हवा में गिराता है। दाना नीचे गिर जाता है और भूसा उड़कर एक ओर गिरता जाता है। एक दूसरा व्यक्ति गिरते हुए गेहूँ के पास रहता है जो ढेरी पर से कुसी (आधे टूटे हुए बाल जिसमें गेहूँ रह जाते हैं) भाड़ या सोहनी से उतारता रहता है। तीसरा एक व्यक्ति और रहता है जो सूप

या टोकरे भर कर देता रहता है। यदि हवा ठीक से चली तो प्रति घंटा चार मन से छः मन गेहूँ आसानी से निकाल लिये जाते हैं। जहाँ हवा नहीं बहती वहाँ कपड़े से हवा चलाकर भूसा उड़ाया जाता है। सिन्ध की तरफ कहीं-कहीं गहाये हुए गेहूँ को काँटों (Forks) से हवा में उड़ाते हैं जिससे मोटा भूसा उड़कर दूरी पर गिर जाता है और गेहूँ और महीन भूसा जमीन पर रह जाते हैं जिनकी सफाई सूप या टोकरी से हवा में उड़ाकर करते हैं। भूसी उड़ाने के लिए विनोअर (Winnower) नाम का एक यंत्र भी होता है। इसमें एक या दो व्यक्ति उसे चलाने के लिए लगाते हैं और एक व्यक्ति अनाज भूसे के मिश्रण को उसमें डालता रहता है। इसमें पंखे लगे रहते हैं जिससे भूसा अलग उड़ जाता है और दाना चलनी पर चलकर गिरता है जिससे कूड़ा-करकट छन जाता है और छोटा दाना भी अलग हो जाता है। ऐसी मशीन से एक घण्टे में दस-बारह मन गेहूँ निकल आते हैं।

मशीनें ऐसी भी होती हैं जिनमें गेहूँ के पूले फेंक दिये जाते हैं जिनकी दोहनी और उड़ावनी होकर गेहूँ के बोरे भरते जाते हैं। ऐसी मशीनें ट्रेक्टर या इंजन से चलती हैं। इण्डियन एग्रिकलचरल रिसर्च इन्स्टीट्यूट फार्म पर मार्शल नाम की थ्रेशर है जो एक घण्टे में लगभग २५ मन गेहूँ तैयार करके बोरे भर देती है।

उपज

भूमि की उर्वरा शक्ति, उसकी तैयारी, समयानुकूल वर्षा या सिंचाई और खाद तथा बीज की जाति पर पैदावार निर्भर है। सभी स्थितियाँ अनुकूल हों तो लगभग चालीस-पचास मन प्रति एकड़ तक गेहूँ हो सकते हैं परन्तु समस्त भारत की औसत उपज परिशिष्ट नं० १ में दी हुई सारणी के अनुसार गणना की जाय तो लगभग सवासात मन प्रति एकड़ होती है।^१

१. श्री गुरुदेवसिंह लुधियाना वाले ने ७१ मन गेहूँ उपजाये और कृषि-पंडित की उपाधि पाई। Supplement to Indian Farming, July. 1953.

वितरण और व्यवसाय—कृषकों के अटूट परिश्रम से फ़सल तैयार होते ही उसपर अनेक आँखें आ गड़ती हैं। इन सबमें मुफ़्त हाथ मारने-वालों की संख्या भी कम नहीं। सबसे पहले भिक्षुक ही पहुँच जाते हैं। फ़सल कटते-कटते पूलों (Sheaf) की माँग हो जाती है। एक समय था जब कृषकगण प्रेम से पुण्यार्थ पूरे देते थे और लेनेवाले ब्राह्मण देवता और अन्य भिक्षुक भी सद्कर्मि थे जिनके आशीर्वाद फलते थे परन्तु अब तो बहुत-से ऐसे मुफ़्तखोर हैं कि देने में यदि थोड़ी-सी कमी हो जाय तो आशीर्वाद क्या थाप देने में भी नहीं चूकते। यद्यपि समय की गति ने बहुत-से कृषकों को सतर्क कर दिया है, फिर भी कुछ ऐसे हैं जो अब भी प्रेमपूर्वक देते जाते हैं। भिक्षुओं के बाद बड़ई, लोहार, हज्जाम, धोबी इत्यादि कारीगरों की बारी आ जाती है। ये लोग कृषकों के औज़ार बनाते हैं और उनके घर का काम करते हैं। इनको देने का दर कहीं-कहीं सालाना निश्चित होता है और उसी भाँति दिया जाता है और कहीं-कहीं कृषक उनकी सेवानुसार इतना अवश्य देते हैं कि जिसमें उन्हें संतोष हो जाय और कृषकों का काम बराबर होता रहे। इन सबसे खेत या खलियान में छुट्टी पायी नहीं कि साहुकार के कारिन्दे पहुँचते हैं और यदि कर्ज अधिक हुआ तो सब बटोर कर ले जाते हैं। यदि ठीक से अनुमान किया जाय तो वे इस तरह से ले जाते हैं कि यथार्थ दर बाज़ार दर से करीब २० शतांश तक कम पड़ता है। जो कृषक आसूदा होते हैं वे सबसे पहले अगले साल के लिए बीज अलग रख देते हैं। जिन स्थानों में गेहूँ की खेती बिना सिंचाई के होती है वहाँ कहीं-कहीं पैदावार बीज से तिगुनी-चौगुनी और कहीं-कहीं आठ-दस गुनी तक हो जाती है, इसलिए पैदावार के तीसरे हिस्से से आठवें हिस्से तक की पैदावार बीज के लिए रखनी पड़ती है। उसके बाद अपने खाने भर को रखकर शेष बेच देते हैं। जो बहुत बड़े कृषक होते हैं वे तो अच्छा भाव आने तक अपने गेहूँ रोके रहते हैं और बाद में बेचते हैं। पहले तो साधारण कृषकों से स्थानीय महाजन माल खरीद लिया करते थे; परन्तु अब विशेषतः मंडी तक वे स्वयं

माल ले जाते हैं जहाँ फिर लूट मचती है। पहला खर्चा तो गाड़ी किराया, यदि गाड़ी किराये पर करनी पड़ी। उसके बाद मंडी तक पहुँचते ही राह में ही आढ़तिये, दलाल वगैरह घेर लेते हैं जिन्हें माल बिक जाने पर निर्धारित द्रव्य देना पड़ता है। इसके बाद मंडी में पहुँचने पर माल बिकने के साथ तुलाई, पल्ले भराई, हम्माली, चौकीदारी (मंडी के चौकीदार का हिस्सा जो रात को गाड़ियों और पशु की रखवाली करता है) मेहतर, पक्के आढ़तियों के रसोईवाले, पानीवाले इत्यादि का हिस्सा देना होता है। जब चुकारा जल्दी लेना होता है तो आढ़तिये अपने पास से रुपये दे देते हैं, परन्तु उसपर अपना ब्याज चढ़ा देते हैं। जब हिसाब होता है तो उसमें धर्मादा, गोशाला, मन्दिर इत्यादि का खर्चा लगाया जाता है। अनुमान करके देखा गया तो यह खर्चा लगभग सात-आठ शतांश तक पड़ जाता है।

बिक्री — कई जगह मंडियों में गाड़ियाँ नीलाम होती हैं और अधिक मूल्य देनेवाले ले जाते हैं, परन्तु चुकाने के वक्त फिर कुछ-न-कुछ भ्रंशट लगा देते हैं। उपर्युक्त वर्णित खर्चों के सिवाय कड़दा काटा जाता है। कड़दे में गेहूँ के सिवाय दूसरे बीज जैसे जौ, सरसों इत्यादि के बीज का अन्दाज लगाकर दाम घटाते हैं। कहीं कहीं चालकर भी तुलवाते हैं इस कड़दे के नाम पर एक-दो शतांश और उड़ जाता है। ऐसे इस प्रकार लगभग आठ-दस शतांश माल से कृषक को हाथ धोना पड़ता है। इस खर्चों और परिश्रम से घबराकर छोटे-मोटे कृषक तो अपने गाँव में ही बेचना ठीक समझते हैं। बड़े कृषक जो अपना माल शहरों में ले जाकर गोदाम में भरकर रख सकते हैं उन्हें अलबत्ता अच्छा लाभ प्राप्त हो जाता है। छोटे कृषकों को सहकारी मंडल बनाकर अपना कार्य करना चाहिए ताकि मंडल की स्थिति बड़े कृषक की स्थिति के समान हो जाय।

यह तो हुई बाजार की हालत। अब ज़रा गेहूँ की खेतीवालों को लाभ-हानि कितनी होती है इसपर विचार करना चाहिए।

कृषकों की आमदनी तो गेहूँ के मूल्य की ही होती है, वैसे अनुमान के लिए भूसे का मूल्य भी जोड़ा जा सकता है। यदि भूसान बेचकर पशुओं

को खिलाया जाय तो लाभ के मद में अपने पशुओं के खाद का मूल्य जोड़ देना चाहिए। व्यय का हिसाब देखा जाय तो निम्नलिखित मदों पर विचार करना होगा।

पाठकगण अपने-अपने यहाँ की परिस्थिति अनुसार गणना कर सकते हैं—

(१) लगान।

(२) जुताई का खर्च या पशु के दाना-पानी का खर्च।

(३) खाद की कीमत यदि बाहर से लाकर डाला जाय।

(४) सिंचाई का खर्च।

(५) निंदाई तथा रखवाली का खर्च।

(६) फसल की तैयारी का खर्च।

(७) बाजार का खर्च।

(८) निज की और अपने कुटुम्ब की मेहनत का खर्च।

(९) बैलों तथा कृषि के यंत्रों के मूल्य पर ब्याज और उसकी घटती (Depreciation)।

उपयोग और गुण—गेहूँ की जड़ छोड़कर प्रत्येक भाग उपयोगी है। हरे पके हुए गेहूँ आग में भूँजकर खाये जाते हैं। पूर्ण पकने पर गेहूँ के मुख्यतः पाँच प्रारम्भिक पदार्थ बन सकते हैं—दलिया, सूजी, मैदा, आटा और चोकर। जब गेहूँ मोटा-मोटा दला जाता है तो उसका दलिया बन जाता है जिसे उबालकर घी, चीनी, गुड़, दूध इत्यादि के साथ खाते हैं। इसका भोजन हलका माना गया है। सफेद कठोर गेहूँ को कुछ भिगोकर मोटा पीसने से उनमें से सूजी निकल आती है। यदि महीन पीसा जाय तो मैदा बन जाता है। इनका उपयोग हलवा, लड्डू, जलेबी, बालू-शाही, खजूर, खाजा, सबैया, बिस्कुट, डबल रोटी इत्यादि अनेक पदार्थों के लिए किया जाता है। बगैर भिगोये गेहूँ पीसे जाते हैं तो उनसे आटा बन जाता है। दलिया, सूजी, मैदा या आटा चालकर उनसे चोकर अलग निकाल लेते हैं जो पशुओं को खिलाया जाता है। कुछ व्यवसायी चोकर

को गेहूँ के साथ पीसकर आटे में मिला देते हैं यद्यपि ऐसा करना अनुचित है। ऐसा आटा यद्यपि स्वादिष्ट नहीं होता फिर भी अच्छे आटे के अभाव में बिकता ही है। आटे से भी कई तरह के पकवान बनते हैं, परन्तु विशेषतः इसका उपयोग रोटी (चपातियों) के लिए ही किया जाता है। इसमें चूँकि गेहूँ के सब भाग रहते हैं, इससे सूजी मँदा इत्यादि की अपेक्षा यह विशेष लाभप्रद होता है। मँदा भारी और कुछ कब्जकारी होता है।

एकरायड^१ साहब के मतानुसार गेहूँ के आटे और मँदे में पोषक पदार्थों की मात्राएँ निम्नलिखित पायी गईं।

निम्नलिखित सारणी से विदित होगा कि संकरायुक्त पदार्थ के सिवाय अन्य स्वास्थ्यदायी पदार्थ मँदे की अपेक्षा आटे में ही विशेष हैं।

प्रतिशत

जल Moisture	मांसोत्पादक पदार्थ Protein	स्निग्ध Fat	संकरायुक्त Carbohydrate	खटिक Ca.	फा. P.	लोहा Fe.	उष्णोत्पादक शक्ति (Calori) प्रति छटाक
आटा १२.२	१२.१	१.७	७२.२	०.०४	०.३२	०.००७३	२००
मँदा १३.३	११.०	०.६	७४.१	०.०२	०.०६	०.००१	१८८

पंजाब की तरफ गेहूँ के साथ चना मिलाकर भी पिसवाते हैं। ऐसा करने से उस आटे में मांसोत्पादक जातीय पदार्थ बढ़ जाते हैं और रोटी विशेष ताकतवर हो जाती है।

वैद्य मतानुसार गेहूँ शीतल, पुष्टिकारक, कफनाशक तथा दस्तावर होते हैं, परन्तु नये गेहूँ गरम और कफकारक होते हैं, इसलिए नये गेहूँ जबतक दो-तीन महीने के न हो जायँ तबतक काम में नहीं लाना चाहिए।

१. Akoryd, W. R. 1941, Health Bulletin NO 23 के आधार पर।

गेहूँ के पदार्थ कुछ व्याधियों में भी काम में लाये जाते हैं। मधुमेह और वायु-विकार (Diabetes and Dyspepsia) में चोकर की रोटी दी जाती है। लू लग जाने पर चोकर और घी पाँव के तलवों में मला जाता है।

पशुओं के लिए उपयोगिता—पूर्ण गेहूँ मोटे-मोटे दल कर उबाल करके घी गुड़ के साथ पशुओं को उस वक्त खिलाये जाते हैं जब उनके बच्चे होते हैं। ऐसा करने से उनका स्वास्थ्य सम्हल जाता है और उनसे घी, दूध भी विशेष मिलता है। चोकर भी दूध देनेवाले पशुओं को दाल की भूसी, खली इत्यादि के साथ खिलाया जाता है। भूसा भी पशुओं को खिलाया जाता है और जो खिलाने योग्य नहीं होता है, उसे पशुशालाओं में बिछाकर खाद की ढेरी पर पहुँचा देते हैं या उसका काम्पोस्ट बना देते हैं।

अन्य उपयोग —गेहूँ की खूँटियाँ जो खेतों में रह जाती हैं वे जला दी जाती हैं। ऐसा करने से खेत के कीट मर जाते हैं। राख खाद का काम देता है। मैदे का उपयोग कपड़ों पर कलफ चढ़ाने के लिए भी किया जाता है। इससे गोंद, लेई इत्यादि भी बनाते हैं।

धान, Paddy—*Oryza sativa*

धान को कहीं-कहीं साल भी कहते हैं। इसका छिलका निकाल देने पर अन्दर से चावल निकल आते हैं।

भारतवर्ष में धान की खेती का विशेष महत्त्व है। अधिकांश जनता का प्रधान आहार चावल ही है। क्षेत्रफल तथा उपज में भी अन्य फसलों से बाजी मारे हुए हैं। जातियाँ भी इसकी अनेक और ऐसी हैं कि हर स्थान के लिए कोई-न-कोई उत्तम जाति मिल ही जायगी। राजस्थान जैसे सूखे प्रदेश से लेकर आसाम जैसे अत्यधिक वर्षावाने स्थान में भी इसे स्थान प्राप्त है। उधर पाँच-छः हजार फुट ऊँचे पहाड़ों पर होनेवाली जातियाँ हैं तो इधर समुद्र तट के निकटवर्ती स्थानों में होनेवाली भी हैं। भूमि के विचार से देखा जाय तो भारी मटियार के योग्य भी जातियाँ हैं तो बलुआ के लिए भी कुछ हैं ही। अम्लवाली अथवा ऊसर भूमि को अपनावानी जातियाँ भी इस अन्न की हैं। यथार्थ में देखा जाय तो चावल अन्नों का राजा है, क्योंकि इसमें बहुत-से गुण विद्यमान हैं। अन्न उपजानेवाली भूमि के तृतीयांश से भी अधिक भाग धान ही हथियाये हुए हैं। खान-पान में इसका सम्मान देखा जाय तो एक और ऐसी सुगन्धित पतले चावल की जातियाँ हैं कि जिनसे रईसों के थाल सजाए जाते हैं तो दूसरी ओर ऐसी मोटी जातियाँ हैं कि जिनसे दीन-हीन जनता का भी पोषण होता है।

धान का पौधा —वैसे तो प्रारम्भ में गेहूँ के पौधे जैसा ही दिखता है, क्योंकि पत्ते वगैरह वैसे ही हैं; परन्तु बाली निकलने पर भेद मालूम हो जाता है। इसके बाल में अनेक शाखाएँ होती हैं, जिनपर धान के कण चिपके हुए-से नजर आते हैं। ऊँचाई में दो-ढाई फुट से लेकर ऐसी

भी जातियाँ हैं जो पानी की बाढ़ के साथ प्रतिदिन नौ-दस इंच बढ़ जाती हैं और आठ-दम फुट ऊँची हो जाती हैं ।

धान की जातियाँ हजारों हैं । वनस्पति विज्ञानवेत्ताओं ने सात हजार जातियाँ बतलाई हैं । उनमें की भारत में होनेवाली भी चार हजार जातियाँ हैं । व्यापारिक संसार में भी इनके अनेक नाम हैं, जिनका यहाँ स्थानाभाव के कारण वर्णन करना अप्पभव है । फिर भी पाठकों की जानकारी के लिए कुछ नाम तो दे ही दिये जाते हैं ।

मोटे तौर पर हम चावल का विभाजन तीन रीति से कर सकते हैं—

(१) पतले, साधारण मध्यम श्रेणीवाले और मोटे

(२) अर्वा और सेला या उसना

(३) हाथ छटा और कल छटा ।

(१) पतले, साधारण या मोटे चावल का वर्ग निर्माण उनके आकार के आधार पर है । १९४१ में धान के व्यवसाय की जो रिपोर्ट निकली थी उनमें महीन चावल उसे माना है जिसकी मोटाई लम्बाई की निष्पत्ति ३ से ३.४५ हो अर्थात् यदि चावल की मोटाई का व्यास एक भाग हो तो लम्बाई में उससे तीन गुने से लेकर ३.७५ गुना लम्बा हो । दूसरी श्रेणी के चावलों के लिए यह निष्पत्ति २.५ से ३.० तक मानी गई है । मोटे चावल में उनकी गणना होगी जिनकी मोटाई लम्बाई की निष्पत्ति २.५ से कम होगी ।

अर्वा या उसना — बिना उबाले हुए धान को कूटने से जो चावल प्राप्त होता है उसे अर्वा और जो उबालकर सुखाये हुए धान से चावल निकाला जाता है उसे उसना कहते हैं । उबाले हुए धान को कूटने से चावल कम टूटता है ।

इन दोनों वर्गों में पहले वर्ग के यानी पतले, साधारण और मोटे चावल ही होते हैं । उसना चावल जरा देरी से पकते हैं और वे जल्दी गीले नहीं होते । इसके विपरीत अर्वा जल्दी पकते हैं और माँड़ निकालने में जरा देरी हो जाय तो ये गीले हो जाते हैं । स्वाद में दोनों में थोड़ा

बहुत अन्तर रहता है, सो जिसे जैसा पसन्द होता है काम में लाते हैं। उसना चावल का रंग तेलिया-सा हो जाता है। ऐसे चावल में कभी-कभी बास भी आ जाती है जो पकाने पर उड़ जाती है।

हाथ छंटा या कल छंटा—धान से चावल निकालने के लिए धान को ओखल मूसल में कूटकर निकालते हैं। ऐसे चावल को हाथ छंटा कहते हैं और ये उत्तम होते हैं। कल से छाँटने में चावल साफ अच्छे होते हैं परन्तु उस सफाई के साथ खाद्योज (Vitamins) की भी सफाई हो जाती है—वे भी चावल से छूटकर भूसी में चले जाते हैं। स्वास्थ्य के विचार से ये चावल ठीक नहीं होते। इनमें भी पहले वर्ग के तीनों जाति के चावल होते हैं।

भिन्न-भिन्न प्रदेशों में होनेवाले चावलों के नाम जो व्यापारी वर्ग में उपयोग में लाये जाते हैं।

नाम प्रदेश	पतला		साधारण		मोटा	
	अर्वा	उसना	अर्वा	उसना	अर्वा	उसना
आसाम			करसैल	मालसीरा लाटसाल		
बंगाल	सीता*	पटनई		दूधकलमा नगरा		कजला
	दाउद खानी	बालम,		इन्द्रसेल		
	कटारी भोग	कलमकट्टी		वांक तुलसी		
	बादशाह भोग	सीतासाल		दूधराज		सतराज*
बिहार		कलमकट्टी		दूधखानी		मोटा-
उड़ीसा		पटनई, सीतासाल		सालधें ती कंकरबीजा		चौधाना

नाम प्रदेश	पतला		साधारण		मोटा	
	अर्वा	उसना	अर्वा	उसना	अर्वा	उसना
उत्तर प्रदेश	देहरादून बास-मती, हंसराज, राई मुनिया	सहारनपुरी सेला, बास-मती, राई मुनिया	अंजन सौंधी दीदाई रामभोग		वांकी, साठी पहाड़ी, भदैया	
पंजाब	बासमती हंसराज मुश-खान*, परमल		बेगमी, सोन			
बम्बई	कमोद, जिनिया* जीरेसाल* कोलपी		आम्बेमोहर सतरसाल*		पटानी	
मद्रास	खीचड़ी— सम्बा, कृष्ण कटक, कटुकुलू		लाल सिर मणी सफेद सिरमणी, सदाई संबा कालागाड़ा	लाल सिर-मणी, सफेद सिरमणी	कुसुमा कोनामाणी कोडाई	कुर्वाई
मध्य प्रदेश	काली कमोद* छतरी* चिनौर बांस पतरी* दिलबरूशा		लूचई बुधिया-बाको समुद्रसोख		गुरमुटिया	

* अच्छे सुगन्धित

जलवायु—धान का जीवन जल ही पर निर्भर है। जिन स्थानों में ६० इंच से अधिक वर्षा होती है वहाँ बिना सिंचाई के धान अच्छा हो जाता है। ४० से ६० इंच वर्षावाले स्थानों में भी बिना सिंचाई के कुछ जातियाँ अच्छी उपज दे देती हैं। २५ से ४० इंचवाले में मोटी जाति के चावल की उपज कुछ हो जाती है, परन्तु इससे कम वर्षा वाले स्थानों में चावल लगाना हो तो बिना सिंचाई के नहीं होंगे और वह सिंचाई नहर की हो। कुओं की सिंचाई से धान की खेती में व्यय अधिक पड़ जाता है।

यह मान लेने में अत्युक्ति नहीं होगी कि धान की खेती का एक भाग यदि तीसरी श्रेणी के वर्षावाले स्थानों में हो तो दूसरी श्रेणीवाले स्थानों में उसका तिगुना भाग पड़ेगा और लगभग सात-आठ गुना भाग ६० इंच से ऊपर वर्षा वाले स्थानों में पड़ेगा।

जाति अनुसार देखा जाय तो कुछ जातियाँ ऐसी हैं जो भूमि की तरी से ही हो जाती हैं तो कुछ ऐसी भी हैं जिनके लिए कम-से-कम उनमें दाना पड़ने तक पाँच-सात इंच पानी खेतों में भरा रहे तभी स्वेच्छानुसार उनकी स्वाभाविक बढ़ हो सकती है और कुछ जातियाँ तो ऐसी हैं जो पाँच-सात फुट तक पानी बढ़ता जाय तो वे भी उसके साथ बढ़ती जाती हैं।

तापमान का विचार किया जाय तो ३० से ३५ शतांश का तापमान अंकुरित होने के लिए उत्तम होता है। वाढ़ के लिए अच्छी जातियों में जबतक दूध न आये तब तब उष्ण वातावरण ही ठीक होता है, परन्तु पकते समय कुछ ठण्डा वातावरण हो जाना चाहिए। वैसे कुछ मोटे चावल की जातियाँ ऐसी भी हैं जो गर्मी में ही बढ़ती और पकती हैं। तरी के हिसाब से वातावरण उष्ण हो या ठंडा नमीवाला ही ठीक होता है। धूप भी समय-समय पर लगती रहे तो वाढ़ अच्छी होती है।

भूमि और जुताई—धान की जातियाँ इतनी होती हैं कि ढूँढ़ने से प्रत्येक प्रकार की भूमि के योग्य कोई-न-कोई जाति मिल ही जाती है। फिर भी साधारणतः यह कहा जा सकता है कि अच्छे महीन धान के लिए मटियार दुमट जमीन होती है। बहुत गहरे पानी में होनेवाले धान के लिए

मटियार मिट्टी भी अच्छी होती है। मोटे धान के लिए बलुआ दुमट और दुमट उत्तम होगी। बलुआ में धान न लगाना ही अच्छा है। मटियार दुमट मिट्टी में खेत के आस-पास छोटी-छोटी क्यारियाँ बनाकर उनमें पानी घेरा जा सकता है और यदि बरसात समयानुसार होती रही तो उनमें धान में दूध पड़ने तक पानी भी रुका रहेगा। सिंचाई से भी ऐसी मिट्टी से अच्छे धान के लिए काम लिया जा सकता है। पी. एच. के हिसाब से देखा जाय तो ४.६ पी. एच. वाली मिट्टी, जिसमें जौ नहीं हो सकते, धान हो जाता है तो दूसरी ओर उस ऊमर भूमि में जिसमें दूसरी फसलें नहीं हो सकतीं धान उपजाया जाता है। इसका मुख्य कारण यह है कि धान के खेत में पानी अधिक रहने से ऊमर भूमि के नमक का घोल इतना कमजोर हो जाता है जिससे धान को हानि नहीं पहुँचती।

जुताई—धान के खेत के लिए गहरी जुताई की आवश्यकता नहीं क्योंकि धान को अधिक गहरा नहीं बोया जाता। बहुधा भूमि पर ही छोटा जाता है। जुताई के लिए पिछली फसल काट लेने के बाद हल चला देना चाहिए। उसके बाद खाद डालकर बरसात के प्रारम्भ में हल चलाकर बखर या हेंगा (Planker) चला देना चाहिए ताकि ढेले टूट जायें। उसके बाद बोने के पहले एक और जुताई करके धान छोट देना चाहिए। जिन खेतों में रोप लगाना हो उनमें चूँकि महीन धान बहुधा बोया जाता है उनकी जुताई दो एक बार और करनी पड़ती है, वह तो पानी भरे खेतों में ही होती है। पहली जुताई से घास-पात दबकर मर जाते हैं। दूसरी जुताई हल से ऐसी की जाती है कि मिट्टी पानी रौंद दिया जाता है। बाद में हेंगा चलाकर मिट्टी-पानी के मिश्रण को बराबर करके उसमें रोप लगा देते हैं। धान की जुताई में भी जहाँ तगड़े बैल होते हैं और पहली जुताई अच्छी हो जाती है तो एक जुताई कम करने से भी काम चल सकता है, परन्तु बंगाल जैसे स्थान में जहाँ बैल छोटे और हलों को कंधे पर उठाकर खेत तक कृषक ले जा सकते हैं वहाँ तो जुताई एक-दो बार अवश्य ही अधिक करनी होती है। जुताई के साथ खेतों की मेड़ों

हुई अर्थात् कुल ०.३६ मन यानी १५.६ सेर ना० हुई। यदि गोबर का खाद देना हो तो इससे दूनी ना० पहुँचाने के लिए १६० मन खाद देना होगा तो ८ मन खली प्रति एकड़ देनी होगी। फा० के खाद के लिए २.५ मन सुपर फॉस्फेट या हड्डी का चूर्ण डालना उत्तम होगा।

पो० के खाद की आवश्यकता नहीं है क्योंकि हमारे यहाँ की भूमि में फसल पूर्ति इसकी मात्रा काफी है। इसके सिवाय अनेक प्रयोगों के आधार पर भी कहा जा सकता है कि पोटाश पूर्ति खाद लाभप्रद नहीं होंगे।

इन अंकों की प्रान्तीय प्रयोगों के अंकों के साथ जरा तुलना कीजिए।

पं० लक्ष्मीनारायण दुबे, मध्य प्रदेशीय कृषि-विभाग के रिटायर्ड ई० ए० डी० अपने अनुभव के आधार पर अपनी 'हमारा ग्राम्य जीवन' नाम की पुस्तक में लिखते हैं, "धान के लिए १५० मन गोबर का खाद और डेढ़ मन से तीन मन के लगभग हड्डी का चूरा या सुपर फॉस्फेट देना चाहिए।"

सजीव खाद में धान की खेती के लिए सबसे सस्ता खाद हरे खाद का पड़ता है। जहाँ पचास-साठ इंच से अधिक वर्षा हो वहाँ ढेंचा का और जहाँ इससे कम हो, सन का खाद ठीक होगा, परन्तु इन्हें मई में बोना होगा ताकि जून के अन्तिम सप्ताह तक ये गाड़े जा सकें। जहाँ मई में वर्षा आ जाती है वहाँ तो यह क्रिया सरलता से की जा सकती है, वरना सिंचाई के आधार पर ही बोना होता है। ऐसी खाद या तो उन्हीं खेतों में उपजाई जा सकती है जहाँ धान लगाना होता है या दूसरे खेतों में उपजाकर भी काटकर लाकर के दे सकते हैं। एक एकड़ की ढेंचे की उपज से दो एकड़ को खाद पहुँचाया जा सकता है। उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश तथा अन्य प्रदेशों में हरे खादों के काफी प्रयोग हुए हैं।

गोबर के अभाव में और हरे खाद तैयार करने की असुविधा हो वहाँ खली का खाद भी अच्छा होगा। कई प्रयोगों में ऐसा खाद भी लाभप्रद सिद्ध हुआ है। लगभग १५ सेर ना० पहुँचे इतनी खली डालनी चाहिए चाहे वह नीम, सरसों या एरण्डी की हो। यदि इनकी ना० के अंक प्राप्त न हो तो ५% मानकर गणना कर लेनी चाहिए।

धन्नालाल, सिरपुरक और कलमकर^१ महोदय ने बिना सिंचाई के काली मिट्टी में धान को अलसी, तिल और मूंगफली की खली के खाद देकर प्रयोग किये थे जिसमें ना० की मात्रा १०, २० और ३० सेर प्रति एकड़ दी थी। बीस सेर ना० के अंक देखे जायें तो सबसे अधिक उपज तिल की खली से, उसके बाद अलसी तथा उससे भी कम मूंगफली की आई। परन्तु लाभ के हिसाब से देखा तो सबसे अधिक लाभ मूंगफली की खली से, उससे कम तिल की खली से और सबसे कम अलसी की खली से था। ना० की मात्रा न्यूनाधिक होने से मूंगफली की खली ६ मन, अलसी की नौ मन और तिल की ८.३ मन डालनी पड़ी थी।

कृत्रिम खाद में एमोनियम सलफेट और सोडियम नाइट्रेट का मिश्रण कहीं-कहीं अच्छा पाया गया है परन्तु आजकल सोडियम नाइट्रेट तो मिलता नहीं है इसलिए १५ सेर ना० पहुँचे इतना खाद एमोनियम सलफेट का ही देना चाहिए।

बम्बई^२ में एमोनियम सलफेट के प्रयोग पर कदम महोदय लिखते हैं कि २० सेर ना० प्रति एकड़ देने से कुछ साल तक तो उपज बढ़ती रही परन्तु बाद में यकायक बहुत कम हो गई क्योंकि खटिक की मात्रा भूमि में कम हो गई। इससे साफ ज्ञात होता है कि सिर्फ कृत्रिम खादों का उपयोग सावधानी से ही करना चाहिए। मूंगफली की खली पाँच-छः मन प्रति एकड़ दी जाय तो धान के लिए बहुत अच्छा खाद होगा।

फॉस्फोरस के खाद में हड्डी का चूर्ण और सुपरफॉस्फेट दोनों ही करीब-करीब समान उपयोगी पाये गये हैं। अम्लदार मिट्टी में तो हड्डी का चूरा ही ठीक होगा। लगभग सात सेर फा० पे० प्रति एकड़ पहुँचे इसनी आवश्यकता है इसलिए इसकी तिगुनी मात्रा पहुँचे इतना खाद देना चाहिए।

(1) The Nagpur Agricultural College Magazine, January, 1943, p. 13

(2) Kadam B. S. Indian Farming, Vol. VI. No. 2, Feb. 1945, p. 51.

फा० के खाद आसाम तथा मध्य प्रदेश में लाभप्रद सिद्ध हुए हैं ।

चूने के खाद से अम्लदार मिट्टी में दूसरी फसलों को जैसा लाभ पहुँचता है ऐसा धान के लिए नहीं पाया गया, क्योंकि धान में एक तो कुछ हद तक प्रतिकूल वातावरण को अनुकूल बना लेने की शक्ति है और दूसरे इसकी जातियाँ भी इतनी हैं कि प्रत्येक भूमि के योग्य मिल ही जाती है ।^१

हेर-फेर और मिश्रण—कई जगह जहाँ धान के खेतों में काटने समय काफी तरी रहती है उनमें काटने के आठ-दस दिन पहले ही मूँग, मसूर, चना, मटर इत्यादि दलहन की फसलें लगा देते हैं। कहीं-कहीं अलसी (तिसी) या सरसों भी छींट देते हैं परन्तु यह अच्छी नहीं होती। दलहन की फसलें ही लगाना ठीक होती है, क्योंकि उससे भूमि की उर्वरा शक्ति भी बढ़ती है। गुजरात की तरफ धान के बाद सेम, एरंडी, चना और कभी-कभी गेहूँ, भी बो देते हैं। कहीं-कहीं मक्का और ज्वार के खेतों में भी उनके साथ धान बो देते हैं। धान के खेतों में ऊख भी लगाई जाती है। जब ऊख लगाते हैं तो उसे काफ़ी खाद दे देते हैं। उस स्थिति में धान को खाद नहीं देना होता है। साधारणतः हेर-फेर करना अच्छा ही है परन्तु कहीं-कहीं ऐसा भी अच्छा होता है कि धान को काटने के पश्चात् खेत को एक बार जोतकर छोड़ दिया जाय। धान की दूसरे साल की फसल के सिवाय अन्य फसल न ली जाय तो उससे भी धान की उपज अच्छी होती है।

बीज और बोआई—धान के बीज कई जाति के होते हैं और बहुत-से कृषक अपने-अपने अनुभव के आधार पर अपनी-अपनी भूमि के योग्य बीज चुन लेते हैं। धान की खेती करीब-करीब सब प्रदेशों में होती है और वहाँ के कृषि-विभागवालों ने स्थानानुकूल जातियाँ निकाली हैं, जिन्हें नम्बर दे रखे हैं। जहाँतक बने कृषि विभागवालों से बीज प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए।

वर्तमान समय में निम्नलिखित प्रचलित जातियाँ प्रसिद्ध हैं।

१. धान के खाद की विशेष जानकारी के लिए देखिये—

Manuring of Paddy by Sethi R. L. 1940. I. C. A. R, Misc. Bul. 38.

मध्यप्रदेश	आर. २, ३	आर. ४, ५, १०, ११, १२ क्रास ११६	आर. ६, ७, ८, १५ क्रास १६
बम्बई	कोलाबा १८४ पलनी ६ कादो ६८-१	जीना ३१, कोलम्बा ५४० कृष्णसाल १ पानवेद ६१	कोलम्बा ४२ जीना १४६ वारंगल ४८७ ग्राम्बेमोहर १५७
हैदराबाद	एच. आर. ५, ८, १२ १६, ३३	एच. आर. ३५, ३८ ३६, ४	
उड़ीसा	एन. १३६, बी. ७६ बेनी भोग	टी. ६०८, ६३५ ११४५, ५६, १४१	टी. ६०, १२४२ बी. ए. एम. ६
आंध्र	एम. टी. यू. ३, ४, १७ ए. के. पी. १	ए. के. पी. ३, ४, ११ बी. ए. एम. ३, ६ बी. सी. पी. २, ४ एम. टी. यू. १, ५, ६, ७, १०, १६ जी. ई. बी. २४ एम. आर. २६ बी	एस. एल. ओ. १२, १६ एम. टी. यू. ६, १५,
मद्रास	ए. एस. डी. ८-१ ए. डी. टी. ३, ६, २० पी. टी. बी २, ७, १०	ए. एस. डी. ५, ६ सी. ओ. १२, १६, १५ ए. डी. टी. २, ११, २५ पी. टी. बी ४, १६, १८, २०	सीओ १३, २० ए. डी. टी १२ एम. टी. यू. १५ पी. टी. बी. २, १०
द्रावणकोर कीचीन	एम. ओ. १, २	सी. १	यू. आर. ६ ए. डी. आर. ६७

१. श्री पार्थशार्थी संचालक, केन्द्रीय धान अनुसंधान संस्था कटक की कृपा से ।

विशेष गुणवाली जातियाँ

बाढ़ सहनेवाली

आसाम—के. एम. जे. ए. आर १०८-१, ए. आर. जी. ३५३-१४८
ए. आर. जी. ६१४-२४ बी.

बिहार—बी. आर. १४, १५

उत्तर-प्रदेश—दूध लच्छी, नैसूरिया

उड़ीसा—एफ. आर. ४३ बी. एफ. एम. १३ ए.

मद्रास—एम. टी. यू. ५, १६ बी. टी. पी. १५

लवण सहनेवाली

आसाम—एस. आर. २६ बी.

ग्रीष्म ऋतु में होनेवाली

आसाम—टी. टी. बी. एस. ३५, ४३, ४६

उड़ीसा—डी. आई. ३-४

मद्रास—एस. एल. ओ. १६, एम. टी. यू. ६, १५ सी. ओ १३

कृछ जल्दी पकनेवाली चीनी जातियाँ

सी. एच. २ (८७ दिन में), सी. एच. ४५ (१०५ दिन में)

सी. एच. ६२, ६३ (११० दिन में)

धान में एक जाति ऐसी भी होती है जिसके प्रत्येक फल के छिलके में दो-दो चावल होते हैं। परन्तु उसकी उपज बहुत कम होती है।

बीज की प्राप्ति—स्मरण रहे कि स्थान परिवर्तन से चावल की जातियों के गुणावगुणों में परिवर्तन हो जाता है, इसलिए कृषकों को चाहिए कि उनके स्थान में अथवा निकटवर्ती स्थान में जिस जाति ने ख्याति पायी हो उसे अपनायें और निज के खेतों में बोने के लिए अपनी फसल के उत्तम बीज ही रक्खें। यदि नई जाति की जाँच करनी हो तो कृषि विभागवालों की सम्मति से सरकारी अच्छे गोदामों से ही बीज खरीदें। बहुधा जमींदार भी अपने कृषकों को बीज देने का प्रयत्न करते रहते हैं।

अपना बीज न रहने से सवान ड्योढ़ान पर मालगुजारों से अथवा साहु-कारों से बीज लेना पड़ता है।

बीज की मात्रा—गेहूँ के बीज की भाँति धान के बीज की दर भी विभिन्न स्थानों में पृथक्-पृथक् है, परन्तु उतना अन्तर नहीं है। इसमें बोने की रीति के अनुसार न्यूनाधिक बीज लगते हैं। धान तो साधारणतः छींटकर बोया जाता है अथवा रोप लगाकर लगाते हैं। कहीं-कहीं ड्रिल, नलीवाला हल अथवा हलके त्रिफन से भी बोते हैं। सबसे कम बीज रोप द्वारा लगाने में लगता है। उससे अधिक ड्रिल से बोने में और सबसे अधिक छींट कर बोने में लगता है। चूँकि अधिकांश स्थानों में छींटकर अथवा रोप-कर ही बोते हैं, इसलिए यहाँपर बीज की दर प्रति एकड़ दोनों रीति से बोने की दी जाती है।

नाम प्रदेश	छींटकर बोने में सेर प्रति एकड़	रोपकर लगाने में सेर प्रति एकड़
बंगाल	४०	१५
मद्रास	४०	२०
बिहार	४०	२०
उत्तर प्रदेश	३०	१५
मध्य प्रदेश	५५	४०
आसाम	३०	१५
उड़ीसा	५५	४०
पंजाब	१०	५-६
बम्बई	—	४०
पूर्वी रियासतें (उड़ीसा के निकट)		५५
मध्य प्रदेश की रियासतें		६०
हैदराबाद	५०	१५
मैसूर	४०	१०
काश्मीर	—	२०

कहीं-कहीं इससे अधिक बीज भी गिरता है जैसे कि बिहार के छोटा नागपुर की तरफ । वहाँ लगभग ७५ सेर बीज छीटा जाता है और लगभग ६० सेर रोपे के लिए लगाते हैं । छींट कर बोने की अपेक्षा रोपने वाले के लिए बीज में न्यूनाधिकता अधिक है । इसका खास कारण यह है कि एक-एक स्थान पर रोपने के पौधों की संख्या दो-चार से लेकर पन्द्रह बीस तक होती है ।

बोने का समय—मोटे तौर पर हम धान की फसल को तीन भागों में बांट सकते हैं । बरसाती, सर्दी वाली और गर्मी वाली । पहली बरसात के अन्त तक पक जाती है । दूसरी हेमन्त ऋतु तक पकती है और तीसरी गर्मी में होती है । बङ्गाल में इन तीनों के पृथक्-पृथक् नाम हैं । आस (आशु—जल्दी पकनेवाली) दूसरी आमन (हेमन्त ऋतु का अपभ्रंश) यानी हेमन्त ऋतु में पकनेवाली और तीसरी को बोरो कहते हैं । तीनों में विशेष भेद निम्न लिखित हैं—

	आस मोटा	आमन पतला	बोरो मोटा
जाति धान जमीन जिसमें खेती की जाती है	ऐसी ऊँची जमीन जिसमें सितम्बर में पानी सूख जाता है ।	ऐसी नीची जमीन जिसमें अक्टूबर तक भी कुछ पानी रह जाता है ।	जिस जमीन में नवम्बर तक पानी लगा रहता है ।
बोने का समय	वैशाख-ज्येष्ठ (अप्रैल-मई)	ज्येष्ठ-आषाढ़ (जून)	मार्गशीर्ष से माघ (नवम्बर से फरवरी)
तीसरी में बीज गिराने का समय	ज्येष्ठ (मई)	ज्येष्ठ-आषाढ़ (जून)	मार्गशीर्ष- पौष (नवम्बर- दिसम्बर)
रोप लगाने का समय	आषाढ़ (जून)	आषाढ़-सावन (जून-जुलाई)	पौष-माघ (दिसम्बर- जनवरी)
फसल की तैयारी का समय	भाद्रपद (सितम्बर)	पौष-माघ (दिसम्बर- जनवरी)	फाल्गुन से ज्येष्ठ (मार्च-अप्रैल से जून)

औस वर्ग में अधिकांश जातियाँ मोटे चावल की होती हैं परन्तु कुछ पतले चावल वाली जातियाँ भी इस वर्ग में आती हैं। बोरो धान के चावल मोटे ही होते हैं। इनके सिवाय कुछ जातियाँ ऐसी हैं कि पानी की बाढ़ के साथ बढ़ती हैं और यदि पानी की बाढ़ आठ-नौ इंच प्रति दिन रहे तो धान भी उतना ही बढ़कर अपना सिर पानी के ऊपर ही रखता है परन्तु यदि इससे अधिक बाढ़ आजाय तो प्रतियोगिता में धान की हार हो जाती है—वह डूब जाता है और फसल नष्ट हो जाती है। कोई-काई धान तो ऐसा है कि दस-पन्द्रह फुट ऊँचा हो जाता है। ऐसे धान की आयु लगभग आठ-दस मास की होती है और खड़े पानी में ही धान के बाल काट लिये जाते हैं। भूसा सड़कर मिट्टी में मिल जाता है या उसे बाद में जला देते हैं। ऐसा धान बहुत नीची ज़मीन में पौष-माघ (दिसम्बर-जनवरी) में बोया जाता है ताकि पानी आने तक काफी ऊँचा बढ़ जाय और बाद में साधारण बाढ़ से प्रतियोगिता में भाग ले सके। आश्विन-कार्तिक (सितम्बर-अक्टूबर) में फसल काट ली जाती है।

बिहार, उत्तर प्रदेश तथा उड़ीसा में करीब करीब यही क्रम है, परन्तु वर्षा के कुछ आगे-पीछे होने के समय में हेर-फेर हो जाता है। बिहार से उत्तर प्रदेश में और उत्तर प्रदेश से पंजाब में वर्षा और भी विलम्ब से होती है तो वहाँ आषाढ़ के अन्तिम पक्ष तक बीज नर्सरी में गिराते हैं जबकि बिहार में शुरू आषाढ़ में ही गिरा देते हैं। जिस नीची ज़मीन में तरी रहती है और जिसे चर कहते हैं उसमें तो वैशाख (अप्रैल) में ही रोप के लिए बीज गिरा देते हैं। चर के पौधे वर्षा के प्रारम्भ में ही खेतों में लगाने जैसे हो जाते हैं। दक्षिण भारत में बरसाती फसल आषाढ़-श्रावण (जून-जुलाई) में बोयी जाती है और गर्मी वाली पौष-माघ (दिसम्बर-जनवरी) में बोते हैं।

नर्सरी में बीज गिराये जायें तो लगभग एक महीने बाद जब पौधों के तने कुछ चपटे होने लगें। तब खेतों में लगाना चाहिए। बम्बई प्रान्त में चूक नर्सरी एक खास रीति से तैयार की जाती है इसलिए वहाँ रोपने

के योग्य पौधे बीस दिन में ही तैयार हो जाते हैं। जहाँ साधारण खेतों में बीज गिराये जायं वहाँ तीस-चालीस दिन में रोपने योग्य हो जाते हैं। कहीं-कहीं प्रयोग करके देखे गये तो ज्ञात हुआ कि चालीस दिन से अधिक आयु के रोप से उपज में कुछ घटा पड़ जाता है।

आसाम में ओस ऊँची जमीन में, सेल एक फुट पानी में और असरा दो फुट से सात फुट गहरे पानी में होती है।

उत्तर प्रदेश में भी ओस, आमन और बोरों के बदले में दूसरे शब्द काम में लाये जाते हैं। जो धान साठ दिन में पक जाता है उसे साठी कहते हैं, जो मार्गशीर्ष (नवम्बर) तक तैयार होता है उसे अग्रहनी और जो बोरो जैसा गर्मी में होता है उसे जेठी फसल कहते हैं।

मध्य प्रदेश में फसल बोई तो करीब-करीब एक ही समय जाती है परन्तु जाति अनुसार तैयार आगे-पीछे होती है। जल्दी तैयार होने वाली 'हरई' बीचवाली को 'मभोल' और देर वाली को 'माही' कहते हैं।

बोने की रीति—

धान तीन रीति से बोया जाता है—

१. छोट कर।

२. हल, हलके त्रिफन या ड्रिल से कतारों में।

३. नर्सरी में बीज बोकर जब पौधे लगभग एक महीने के हो जायं तो खेतों में लगाये जाते हैं।

१. बीज कहीं-कहीं पहले अंकुरित करके छीटे जाते हैं। बीज के अंकुरित होने के लिए पहले पानी और बाद में ऊष्णता की आवश्यकता होती है। इसलिए पहले भिगोकर उन्हें फुला लेते हैं बाद में पत्ते, चटाई या बोरों से ढक देते हैं जिससे ऊष्णता पहुँचती है और बीज अंकुरित हो जाते हैं।

अंकुरित बीज में पहला लाभ तो यह है कि बीज के अंकुर फँकने की शक्ति मालूम हो जाती है और उसीके अनुसार बीज गिराये जा सकते हैं। यदि अंकुरित बीज कम दिखलाई दें तो बीज गिराने की मात्रा बढ़ा देनी चाहिए।

दूसरा लाभ यह है कि अंकुरित बीज से पौधे जल्दी निकल आते हैं कहीं कहीं बोने के दिनों में लगातार वर्षा होती रहती है । ऐसे स्थानों में यदि तीन-चार दिन वर्षा रुक जाय तो उन्हीं दिनों में अंकुरित धान से पौधे तैयार हो जाते हैं और बाद की वर्षा से उनको हानि नहीं होती । ऐसे स्थानों में सूखे बीज लगातार वर्षा होती रहने से मर जाते हैं ।

२. कतारों में यन्त्र (हल, तिफन, ड्रिल) द्वारा वहीं बोया जाता है । जहां सूखे खेतों में बो सकते हैं । गुजरात और मध्य भारत की तरफ कहीं-कहीं धान ऐसे ही बोया जाता है । कभी-कभी कपास, ज्वार और मक्का के साथ भी धान बो देते हैं जिसमें कुछ कतारें धान की तो शेष मुख्य फसल की होती हैं । ऐसा धान बहुधा मोटे चावल वाला ही होता है । ऐसी रीति से बोने में लाभ यह होता है कि घास-पात हलके यन्त्रों द्वारा आसानी से हटाये जा सकते हैं ।

३. रोप लगाना—रोप लगाने के लिए पौधे तैयार नर्सरी में किये जाते हैं । नर्सरी के लिए जब एक एकड़ के लिए पौधे तैयार करने होते हैं तो एक एकड़ का दसवाँ या बारहवाँ भाग नर्सरी के लिए तैयार किया जाता है । ज्येष्ठ में जिस नर्सरी में बीज गिराते हैं ये नर्सरी कुछ नीची जमीन में बनाते हैं ताकि जो कुछ पानी उन दिनों में गिरे उससे लाभ हो । बहुधा ऐसी नर्सरी पानी के निकट बनाते हैं ताकि आवश्यकता होने से कुछ पानी दिया जा सके । नर्सरी वाली जमीन की जुताई बहुत अच्छी की जाती है । खाद भी उसमें साधारण खेतों से कम-से-कम दुगुना डालना चाहिए । नर्सरी में बीज छींटकर ही बोये जाते हैं । बीज की मात्रा प्रति एकड़ जो रोपने के लिए दी गई है उतनी ही एकड़ के दसवें हिस्से में डालना चाहिए । बीज छींटने के बाद उन्हें दतारी से मिट्टी में मिलाकर पानी देना चाहिए ।

बम्बई की तरफ कुछ भागों में नर्सरी बनाने की एक विशेष रीति है । नर्सरी वाली जमीन को पहले जलाते हैं । नर्सरी की भूमि पर दो इंच तह सूखे गोबर का या उसके अभाव में छः इंच मोटा पुआल का अथवा पत्ते,

सूखी टहनियों इत्यादि को भूमि पर डालकर जलाते हैं। सिंध की तरफ तो जलाने के दूसरे दिन ही राख को मिट्टी में मिलाकर बीज छींट देते हैं। जो बीज तैरने लग जाते हैं उन्हें एक व्यक्ति कोदाल से दबाता रहता है। बम्बई की तरफ पन्द्रह-बीस दिन बाद बीज गिराये जाते हैं और नित्य-प्रति थोड़ा-थोड़ा पानी देते रहते हैं। ऐसी नर्सरी से बीस-पच्चीस दिन में ही रोपने योग्य पौधे मिल जाते हैं। साधारण नर्सरी में तीस-चालीस दिन में रोपने योग्य पौधे होते हैं।

इस प्रकार नर्सरी में चार-पाँच लाभ हैं :

(१) भूमि की भौतिक स्थिति सुधर भी जाती है। यदि वह चिकनी और भारी मिट्टी हुई तो कुछ हलकी हो जाती है।

(२) घास, पात और कीट तथा उनके अण्डे मर जाते हैं।

(३) सूक्ष्म जन्तुओं में भी परिवर्तन हो जाता है।

(४) कुछ हद तक फॉस्फेट भी धुलनशील हो जाता है।

(५) खेतों को राख का खाद भी मिल जाता है।

रोपने की रीति—रोपने के लिए जिन खेतों में थोड़ा पानी रहता है उनकी जुताई करके मिट्टी पानी का एक रस कर देते हैं। बाद में पठार चलाकर मिट्टी बराबर करके पौधे लगाते हैं। एक एकड़ के लिए नर्सरी से रोप उठाना, उन्हें खेतों तक पहुँचाना तथा रोपने के लिए लगभग १५ मजदूरों की आवश्यकता होती है। रोपने की क्रिया गिरते हुए पानी में भी होती रहती है। स्त्रियाँ जहाँ काम करती हैं वहीं गीत गाती हुई एक धुन में धान के पौधे लगाती रहती हैं जिससे काम भी विशेष होता है।

प्रत्येक स्थान पर एक पौधा लगाया जाय तो अच्छा है परन्तु इसमें कठिनाइयाँ बहुत हैं। एक तो किसी कारण से पौधा नहीं लगा तो जगह खाली रह जाती है। दूसरा एक-एक पौधा चुनकर लगाने में रोपनेवाले का समय बहुत नष्ट होता है जो रोपने के मौसम में अमूल्य होता है। इसलिए तीन-चार पौधों का लगाना ही ठीक है। रोपनेवाले के हाथ

ऐसे सघे हुए होते हैं कि तीन-चार पौधों का गुच्छा आसानी से उनकी चिमटी में आ जाता है ।

रोपने की दूरी ज़मीन की उपज शक्ति तथा धान की जाति पर निर्भर है । अच्छी उपजाऊ ज़मीन में धान की दौंजी (Tillering) अधिक निकलती है, इसलिए दूरी अधिक हो सकती है । उसी भाँति कोई-कोई जातियाँ भी ऐसी होती हैं जो दौंजी अधिक देती हैं कमज़ोर, भूमि में $6" \times 6"$ और अच्छी उपजाऊ भूमि में $5" \times 5"$ की दूरी अच्छी होगी ।

छींटकर बोने की अपेक्षा धान रोपने से उपज लगभग डचोढ़ी हो जाती है । परन्तु रोपना कई बातों पर निर्भर है । एक तो रोपने के समय मज़दूरों की कमी हो जाती है जिसकी वजह से कृषक अधिक खेत रोपने के लिए नहीं छोड़ सकते दूसरा रोपने में समय अधिक नष्ट होता है सो जिसके पास बहुत खेत हैं वे इतना समय भी नहीं दे सकते ।

निंदाई और देख-भाल—धान के खेतों में जहाँ धान छींटकर ऊँची ज़मीन में बोया जाता है वहाँ घास-पात के जमने की सम्भावना रहती है, उसे निकालते रहना चाहिए । जिन खेतों में रोप लगाये जाते हैं उनकी पहले तो तैयारी ऐसी होती है कि घास-पात होने ही नहीं पाते । दूसरी बात यह है कि धान पानी में खड़ा रहता है । इससे भी अधिकांश जंगली पौधे पनपने नहीं पाते; इसलिए ऐसे खेतों में निराई नहीं करनी पड़ती । जब धान के खेतों में दूसरी जाति के धान के पौधे दिखाई दें तो उन्हें अवश्य उखाड़ देना चाहिए ताकि बीज शुद्ध रहे । जहाँ व्याधियुक्त पौधे दिखलाई दें वहाँ उन्हें भी उखाड़ लेना चाहिए । बहुधा खेतों में धान के पौधे-जैसे जंगली^१ धान के पौधे बहुत निकल आते हैं । जिन खेतों में ऐसे

^१ मध्य प्रदेश में ऐसे धान को कंगी कहते हैं । इससे छुटकारा पाने के लिए दबे महोदय ने कुछ रंगीन जातियाँ निकाली हैं । मध्य प्रदेशीय कृषि विभाग से इनके बीज मिल सकते हैं—Dave B. B. 1943, Indian J. of Agricultural Science, Vol. XIII, p. 46-53.

पौधे पाये जायं उनमें धान ऐसी जाति का लगाना चाहिए जिसके पौधे रंगीन हों ताकि जंगली पौधे उखाड़े जा सकें। कभी-कभी पत्तों की बाढ़ बहुत हो जाती है तो उस स्थिति में उन्हें ऊपर से काटकर पशुओं को खिला देते हैं। सिन्ध की तरफ बहुधा ऐसा किया जाता है।

सोहनी के वक्त यह भी देख लेना चाहिए कि खेतों की मेड़ वगैरह कहीं अधिक वर्षा से टूटने जैसी तो नहीं है। कहीं यदि ऐसा हो तो उनकी मरम्मत कर देनी चाहिए। जहां खेत ऊँची-नीची जमीन में हो वहां यह भी देखना चाहिए कि खेत पानी से कट तो नहीं रहे हैं और यदि कट रहे हों तो कटाव की जगह को बन्द कर देना चाहिए।

सिंचाई— पच्चीस इंच से कम वर्षावाले स्थानों में धान बिना सिंचाई के नहीं होगा। ऐसे स्थानों में सिंचाई करनी ही होगी। पानी भी धान के लिए इतना लगता है कि कुओं की सिंचाई से काम नहीं चल सकता। इसकी खेती के लिए तो नहर का पानी ही चाहिए, जो नदी या बड़े तालाबों से प्राप्त किया जा सकता है। २५ से ४० इंच वर्षावाले स्थानों में यदि दो-तीन सिंचाई दी जा सकें तो अच्छा ही है। उसमें उपज बहुत अच्छी होगी। एक सिंचाई पौधों की बाढ़ के समय; दूसरी फूल आने लगे उससे कुछ दिन पहले और तीसरी धान में दूध पड़ने लगे उस समय देनी चाहिए। ४० से ६० इंच वर्षावाले स्थानों में धान की सिंचाई तो नहीं करनी पड़ती परन्तु 'आमन' धान की अच्छी बाढ़ के लिए और अच्छे महीन जाति के चावल के लिए आठ-दस इंच पानी खेतों में भरा रहना चाहिए। आवश्यकता पड़ने से उसे सींचना होगा। जब दाना पूरा बन जाय उस वक्त यदि खेतों में पानी न सूखे तो उसे बहा देना चाहिए ताकि सब धान एक साथ पक जाय व काटने में सुविधा हो। ६० इंच से ऊपर वर्षा के स्थानों में सिंचाई की आवश्यकता प्रायः नहीं होती।

उपर्युक्त प्रकार की सिंचाई के सिवाय कई स्थानों में धान बोने के पहले भी सिंचाई करनी पड़ती है। कई जगह नर्सरी में बीज गिराते समय भी सींचने की आवश्यकता होती है। और बाद में भी नित्य प्रति करनी

पड़ती है। सो आवश्यकता अनुसार करनी चाहिए।

बरसात में बोते समय यदि खेतों में पानी अधिक हो जाय तो उसे निकाल देते हैं। पाँच सात दिन बाद जब पौधे बढ़ जाते हैं तो फिर मेड़ से पानी निकलने वाले मुँह को बन्द कर देते हैं।

धान के शत्रु

पशु-पक्षी—पशुओं से बचाने के लिए घेरा या रखवाला चाहिए। पक्षियों से पार पाने के लिए रखवाला ही रखना चाहिए। यदि सीकदार धान लगाया जाय तो दोनों की कुछ हद तक बचत हो सकती है।

कहीं-कहीं केकड़े धान के पौधों को बिना प्रयोजन ही काट देते हैं और कहीं-कहीं धान के खेत की पारी (बांध) में छेद कर देते हैं। जिसके द्वारा पानी बह निकलता है। काश्मीर में स्नेल (snail) से हानि पहुँचती है और चूहे तो सभी जगह अवसर पाने से हानि पहुँचाते हैं। इनमें से पहले का कोई इलाज नहीं, दूसरे के लिए खेतों में कुछ विष डाला जाता है। तीसरे के लिए गेहूँ के वर्णन में दिए हुए उपचार करना चाहिए।

कीट—वैसे तो धान को हानि पहुँचाने वाले कीट अनेक हैं परन्तु निम्नलिखित मुख्य हैं—

टिड्डा, बोट, चरका, (Rice grasshopper)—यह टिड्डी की जाति का कीट है जो ज़मीन में अण्डे देता है। अण्डे महीनों तक ज़मीन में पड़े रहते हैं और बरसात आते ही उनमें से बालकीट निकलकर नर्सरी अथवा खेतों में पौधों पर धावा करते हैं। गर्मी की जुताई से इनके अण्डे का नाश हो सकता है और बाल कीट जो फुदकते रहते हैं थैलियों में पकड़कर मारे जा सकते हैं। जबतक धान खेतों में नहीं लगाया जाता तबतक ये घास पर भी बसर कर लेते हैं।

कोल (Rice Hispa)—इसका तरुण कीट लगभग पाव इंच लम्बा काला कवच पंखी होता है। पंख पर छोटे-छोटे काँटे भी होते हैं। मादा पत्तों के अन्दर अण्डे देती है जिससे पीले रंग के बालकीट निकलकर पत्तों के अन्दर-ही-अन्दर भोजन कर रूपान्तर भी करते हैं। पत्तों के

अन्दर इनके चलने के मार्ग सफ़ेद से नज़र आते हैं और तरुण कीट निकल कर फिर पत्ते खाना शुरू कर देते हैं। इनसे बचाने का उपाय यह है। कि नर्सरी में जब ये पाये जायें तो पत्तों की फुनगियों को काट लें और उनको जला देने से उनके अन्दर के बालकीट मर जाते हैं।

गांधी (Rice bug)—यह खटमल की जाति का कीट होता है। धान के पत्तों पर कतारों में इसके अण्डे पाये जाते हैं जिनसे कीट निकलकर पत्तों का रस चूसते रहते हैं। इनसे एक अजीब गंध निकलती रहती है जिससे ये आसानी से पहचाने जा सकते हैं।

माहो (Hopper)—यह भी रस चूसनेवाला कीट होता है। मादा अण्डे पत्तों पर ही देती है। जब वह बहुत बढ़ जाता है। तो बाल में दाना बनने नहीं पाता। सब रस यही चूस जाता है। यह जब चलता है तो सीधा कभी नहीं चलता। तिरछा ही चलता है इससे आसानी से पहचाना जा सकता है। गांधी और माहो को मारने के लिए रात को खेतों के पास आग जलायी जाय तो उसमें ये कीट गिरकर मर जाते हैं। नर्सरी में हाथ जाली से भी पकड़े जा सकते हैं।

तितली की जाति के दो चार कीट हैं जिनसे भी धान को हानि पहुँचती है। इनमें का पहला है। बाकी (Rice case worm)। यह पतंग है जिसकी मादा पत्तों पर अण्डे देती है। बाल कीट निकलकर पत्ते खाते हैं और कुछ पत्ते काटकर उन्हें अपने मुँह से रेशम जैसी लार निकाल कर उन्हें जोड़ लेते हैं और उन्हीं में छिपे रहते हैं। धान के खेतों में देखा जाय तो कटे हुए पत्तों के गुच्छे पीधों पर लटके हुए या पानी में तैरते हुए नज़र आते हैं जिन्हें खोलकर देखा जाय तो उनमें से ये कीट निकलते हैं। पानी पर मिट्टी का तेल थोड़ा डाल कर रस्सों से अथवा बाँस की पतली छड़ियों से पीधे हिला दिये जाय तो ये कीट पानी में गिरकर मर जाते हैं। जहाँ सिंचाई का प्रबन्ध हो वहाँ कुछ दिनों तक धान के खेत में से पानी निकाल दिया जाय तो भी ये कीट मर जाते हैं।

दूसरा भीक (Rice stem borer), धड़ छेदक कीट है। यह

भी पतंग ही होता है । मादा पत्तों पर अण्डे देती है जिनसे बालकीट निकलकर पौधों की डाली में छेद करके उसीमें रहते हैं और गूदा खाते रहते हैं । ये जल्दी पहचाने नहीं जाते । जब बाल पकने का समय आता है तो उसमें दाना नहीं बन पाता तब पता लगता है । इनकी मादा जब अण्डे देती है तो उन्हें बाल से ढक देती है । ध्यान से देखते रहने से ऐसे अण्डे मिलें तो उन्हें पत्ते सहित काट कर जला देना चाहिए । खेत में धान के डण्डलों को भी जला देना चाहिए ।

तीसरा कीट स्वॉरमिंग केटर पिलर है । यह भी एक पतंग है । एक-एक मादा लगभग पाँच सौ-छ सौ अण्डे एक साथ देती है और उन्हें बाल से ढक देती है, पूर्ण बाढ़ पाया हुआ बालकीट लगभग एक इञ्च लम्बा होता है । कोष भूमि में बनाया जाता है । ये भुण्ड-के-भुण्ड एक साथ चलते हैं । जब एक खेत समाप्त हो जाता है तो दूसरे में जाते हैं । जिन खेतों में पानी हो उनमें थोड़ा-सा मिट्टी का तेल डालकर पौधे बाँस की पतली छड़ी से हिलाये जायें तो कीट पानी में गिरकर मर जाते हैं । चूँकि कोष भूमि में बनाते हैं खेतों में अच्छी जुताई से भी लाभ होता है । जहाँ खेतों में पानी न हो वहाँ जिस खेत में आक्रमण प्रारम्भ हो उसके चारों ओर खाई खोदकर पौधों को छड़ी से हिलाया जाय तो कीट भागते हैं और नाली में गिर पड़ते हैं जहाँ मारे जा सकते हैं ।

फंगस वाली व्याधियाँ : बन्ट—गेहूँ में बन्ट जैसी व्याधि होती है । वैसी धान में भी होती है परन्तु इतनी ही नहीं होती कि जिसके लिए विशेष परिश्रम किया जाय । धान को पानी में डालने से बन्ट वाले बीज तैर जाते हैं सो बीज गिराते समय धान को पानी में डालकर देख लेना चाहिए और तैरनेवाले बीज फेंक देना चाहिए ।

दूसरी व्याधि कायमे की होती है जिसे झूठा कायमा (False smut) कहते हैं । इसमें गेहूँ के बीज में जैसा काला चूर्ण होता है वैसा नहीं होता । बीज का आकार बढ़ जाता है और गूदा पीला या सफेद हो जाता है । इसका फैलाव भी ऐसा नहीं होता जिसकी ओर विशेष ध्यान

दिया जाय ।

तीसरी व्याधि स्कलेरोशियम (*Sclerotium Oryzae*) नाम की है । इसमें धान के बहुत से बालों में चावल नहीं बनता । वे खाली रह जाते हैं और जब दूसरे पौधों के बीज पकने लगते हैं उस समय ऐसे पेड़ों में से जड़ के निकट से नये पत्ते निकलना शुरू हो जाते हैं । चूंकि व्याधि के बीज भूमि में रहते हैं इसका इलाज कठिन ही है । नर्सरी वाली भूमि को जलाकर व्याधि रहित कर लेना अच्छा है । पौधों की ऐसी स्थिति कभी-कभी धड़ छेदक कीट से आक्रमणित पौधों में भी पाई जाती है ।

खाद्य सम्बन्धी व्याधियाँ—जब खनिज द्रव्य अधिक मात्रा में घुलनशील होते हैं तो 'टिपबर्न' (Tipburn) नाम की व्याधि हो जाती है । इस व्याधि में ऊपर से पत्ते सूखने लगते हैं । ऐसे खेतों में सजीव खाद देने से और उनमें पानी अधिक रहने से भी अच्छा होगा । यदि उसे कभी-कभी बहा कर नया पानी खेतों में दिया जाय तो और भी उत्तम होगा ।

पीलापन—घने बाल से अथवा नत्रजन के खाद के अभाव से फसल में पीलापन आ जाता है इसलिए इनमें से जो कारण हो उसे दूर करना चाहिए ।

खड़ासिर—धान की बालियाँ अन्न के वजन के कारण इधर-उधर झुक जाती हैं । जब किसी कारण से पूर्ण दाना नहीं बन पाता तो बालियाँ खड़ी ही रहती हैं । जब ऐसी स्थिति दिखाई दे तो पानी को बहा देने से कुछ लाभ होता है ।

फसल की तैयारी और उपज

बोने के समय से जाति अनुसार ढाई-तीन महीने से लेकर अधिक पानी में होनेवाली जाति के लिए दस महीने भी लग जाते हैं, परन्तु साधारणतः 'औस' तीन महीने में, 'आमन' लगभग पांच महीने में और 'बोरो' तीन-चार महीने में तैयार हो जाती है । बालियाँ निकलने के बाद

लगभग तीन-चार सप्ताह में धान पक जाता है ।

धान की कटाई अधिकांश स्थानों में ठेके से होती है । उपज का कुछ हिस्सा दिया जाता है । बंगाल की तरफ कहीं-कहीं कटाई ढुलाई वगैरह का खर्च सोलह से बीस शतांश तक पड़ता है तो दूसरी ओर मद्रास में कहीं-कहीं पांच शतांश में ही काम बन जाता है । उत्तर प्रदेश तथा मध्य प्रदेश में भी कटाई अधिकतर ठेके से ही होती है । अब धीरे-धीरे कुछ स्थानों में मजदूरी नगदी में भी चुका दी जाती है । जहाँ ठेके का प्रश्न होता वहाँ प्रति मजदूर प्रतिदिन अधिक काम होना स्वाभाविक बात है । यदि मजदूरों से कटवाया जाय तो प्रति एकड़ ७-८ मजदूर लगते हैं । ठेके से कटवाने में वही काम चार-पाँच मजदूर भी कर डालते हैं । धान को काटने के पश्चात् कहीं-कहीं खेतों में छोड़ दिया जाता है और पाँच-सात दिन बाद इकट्ठा करके खलिहान में ले आते हैं । जहाँ चोरों का भय होता है, वहाँ उसी समय फसल हटा ली जाती है ।

खलिहान में या घर पर लाने के पश्चात् आवश्यकतानुसार उसकी दोनी या गाहनी करते हैं । गेहूँ की भाँति तुरन्त गाहनी नहीं करते । धान में भी 'औस' की दोनी बहुधा उसी समय कर लेते हैं । 'आमन' की गहाई बङ्गाल की तरफ कभी-कभी दो-तीन महीने बाद होती है । अधिकांश स्थानों में बैलों से की जाती है । गेहूँ की भाँति खला-भर कर के उसपर बैल गोल चक्कर में घुमाते हैं और धान को बार-बार उलट-पुलट करते रहते हैं । जब देखते हैं कि दाना छूट गया तो उसी पर और धान डाल देते हैं । चूँकि बीज भूसे से जल्दी पृथक् हो जाते हैं इसलिए धान को गेहूँ की भाँति अधिक सुखाने की आवश्यकता नहीं होती । कभी-कभी तो इसलिए कि भूसा टूटे नहीं । थोड़ा पानी भी छींट देते हैं ।

साधारणतः चार बैल और दो मजदूरों से एक एकड़ का माल एक दिन में तैयार हो जाता है । वैसे बाढ़ अच्छी हो तो दो बैल और भी लग सकते हैं ।

गह्राई के पश्चात उड़ावन की क्रिया होती है। सो गेहूँ की भाँति हवा में उड़ा कर साफ कर लिया जाता है। भूसा उड़ जाता है और बीज की ढेरी नीचे लग जाती है।

बङ्गाल की तरफ तथा अन्य कई स्थानों में धान के बण्डल को लकड़ी के तख्ते पर पीटते हैं। बीज छूटकर गिर जाता है। ऐसे धान में विशेष भूसा नहीं होता। चार मजदूर एक एकड़ के धान को आसानी से पीट सकते हैं। दक्षिण भारत की तरफ कहीं-कहीं दो फुट व्यास का षत्थर का रोलर भी चलाकर दाना भूसा पृथक् करते हैं। इस कार्य के लिए कलें भी काम में लाई जा सकती हैं।

कहीं-कहीं ऐसा भी करते हैं कि आठ-दस फुट ऊँचे मचान पर बाँस का टट्टा चलनी जैसा रख देते हैं। उसपर लम्बा रस्सा बाँधकर कृषक के घरवाले या मजदूर उस रस्से को पकड़ कर पाँव से धान को चलाते हैं, दाना टट्टे के नीचे गिरता जाता है। चूँकि काफी ऊपर से गिरता है हवा में भूसा उड़ जाता है और बीज नीचे गिर जाता है।

उपज

साधारणतः 'बोरो' से 'औस' की और 'औस' से 'आमन' की उपज अच्छी होती है। आमन की जातियाँ चूँकि महीन चावल की होती हैं उसके लिए भूमि की तैयारी भी अच्छी की जाती है और इसकी आयु भी अधिक होती है। इन कारणों से भी आमन की उपज अच्छी होती है।

धान किसी जाति का हो, उसकी उपज जल की प्राप्ति पर निर्भर है। यथा समय वर्षा होती रहे अथवा आवश्यकतानुसार सिंचाई द्वारा जल पहुँचाया जा सके तो पैदावार सोलहो आना हो जाती है। इसके साथ में यदि भूमि भी उत्तम हो तो बङ्गाल में आमन धान की उपज चालीस-पचास मन और औस की पच्चीस-छब्बीस मन प्रति एकड़ तक हो जाती है। वैसे औसत उपज औस और बोरो की बङ्गाल में पन्द्रह-सोलह मन और आमन की बीस मन तक ली जा सकती है। उत्तर प्रदेश में रोपे

हुए की औसत उपज पन्द्रह-बीस मन और छीटे हुए की दस-बारह मन तक ली जा सकती है ।

धान में से ६०-७० शतांश तक चावल निकलता है । लगभग दो हिस्सा चावल और एक हिस्सा छिलका मान लेना उचित होगा । इस हिसाब से चावल की उपज के अङ्कों में उपज की आधी मात्रा और जोड़ दी जाय तो वह धान की उपज पड़ेगी ।

समस्त भारत की उपज लगभग ८ मन चावल अथवा १२ मन धान पड़ती है । (देखिये परिशिष्ट १)

उपज भूसा—धान और भूसे की निष्पत्ति भी भूमि की उर्वरा शक्ति, धान की जाति तथा समयानुकूल वर्षा पर निर्भर है । गेहूँ में गेहूँ की अधिक उपज के साथ साधारणतः गेहूँ भूसे की निष्पत्ति बढ़ती जाती है । परन्तु धान के साथ ऐसा नियम सिद्ध नहीं होता । कभी-कभी बीज और भूसे की उपज बराबर हो जाती है तो कभी बीज से भूसा दुगुना पड़ता है । ‘आमन’ धान में यह निष्पत्ति ड्यौढ़ी से कुछ कम होती है तो ‘औस’ में करीब दुगुनी हो जाती है । बोरों में भी बीज से दुगुनी उपज भूसे की माननी चाहिए । गहरे पानी में होनेवाले धान में, जो लगभग आठ-दस फुट ऊँचा ही जाता है, भूसा कई गुणा अधिक होगा । वह तो धान के बाल काटते समय पानी में रह कर सड़ जाता है । अन्य प्रदेशों के अङ्क भी देखे गये तो धान भूसे की निष्पत्ति ड्यौढ़ी-दुगुनी ही पड़ती है ।

धान या चावल को सुरक्षित रखने के उपाय

धान अधिक दिनों तक रह सकती है या चावल इसमें अभी तक मतभेद है । परन्तु अधिकांश कृषकों की सम्मति ऐसी है कि धान ही अधिक दिनों तक ठहरता है । धान को रखने में चावल की अपेक्षा एक तिहाई स्थान अधिक लगता है ।

किसी भी अनाज को सुरक्षित रखने की रीति वर्षा पर निर्भर है ।

जिन स्थानों में अधिक वर्षा होती है वहाँ विशेष सावधानी की आवश्यकता है। वातावरण की तरी से बचाने के लिए कई उपचार करने होते हैं। बीज वाला धान तो प्रायः सब प्रान्तों में पुआल (धान के ढण्डल) के रस्सों में ही रखा जाता है। पुआलों को बटकर उसका मोटा रस्सा बना लेते हैं। फिर उसमें लपेट कर धान को रख लेते हैं। कहीं-कहीं मटकों में भी रखते हैं। सिन्ध जैसे सूखे प्रान्तों में तो बोरो में भी रखा जा सकता है। कृपक जो अपने उपयोग के लिए धान रखते हैं। वह यदि थोड़ा हुआ तो मटकों में रखकर उनके मुँह पर दूसरा बरतन या ढकना रखकर मिट्टी से मुँह बन्द कर देते हैं। अन्य रीतियाँ तो गेहूँ सुरक्षित रखने जैसी ही हैं।

उपर्युक्त रीतियाँ धान को सुरक्षित रखने की हैं, परन्तु बहुधा बरसात के आने के पहले ही अधिकांश धान का तो चावल ही बना लिया जाता है सो जिस प्रकार गेहूँ को कीट से सुरक्षित रखने के लिए उपाय बतलाये हैं उन्हींका उपयोग चावल के लिए भी करना चाहिए।

चावल बहुधा बोरो में ही रखा जाता है। वैसे गृहस्थ अपने घरों में मटके, अन्य बर्तन या कोठियों में भी रखते हैं। चावल में राख मिला कर उन्हें रखा जाय तो घुन से हानि नहीं होती है। उपयोग के वक्त चालकर राख अलग की जा सकती है और जब पकाते वक्त चावल धोते हैं, तो चिपकी हुई राख भी धुल जाती है। कहीं-कहीं चावल और चूने के चूर्ण को बराबर भागों में मिलाकर चावल में पांच शतांश के हिसाब से मिला कर रख लेते हैं, जिसका राख जैसा ही असर होता है। बिक्री के वक्त चाल करके चावल बेचते हैं।

वितरण और व्यवसाय

गेहूँ में जिस प्रकार का प्रारम्भिक वितरण दान तथा सेवा के लिए होता है। वैसा ही जहाँ धान अधिक होता है। वहाँ धान का होता है और व्यवसाय भी करीब उसी रीति से होता है उत्पादक से उपयोगकर्ता

तक माल पहुँचाने वाले मध्यस्थ व्यक्ति गेहूँ की अपेक्षा चावल के व्यवसाय में अधिक होते हैं, क्योंकि इसमें धान और चावल दो वस्तुओं का व्यवसाय होता है और फिर जातियाँ भी इतनी हैं कि अनेक व्यवसायी उनके बटोरने में लग जाते हैं। चूँकि धान की कटाई सितम्बर से लेकर जाति अनुसार मार्च तक चलती रहती है चावल के व्यवसायी अधिक समय तक काम में लगे रहते हैं।

अनुमान है कि उपयोगकर्ता से चावल का जो मूल्य प्राप्त होता है उसका सिर्फ साठ से सत्तर शतांश ही कृषकों के पल्ले पड़ता है। शेष मध्यस्थ व्यक्तियों को देने तथा चालान और धान से चावल तैयार करने में व्यय हो जाता है। जो कृषक स्वयं धान से चावल बनाकर बेचते हैं उनको लगभग पाँच शतांश लाभ अधिक हो जाता है।

समस्त भारत में धान की खेती का क्षेत्रफल सात करोड़ छियालीस लाख चौहत्तर हजार एकड़ है। यदि एक मन प्रति एकड़ ही बीज के लिए रखा जाय तो सात करोड़ छियालीस लाख चौहत्तर हजार मन बीज के लिए रखना पड़ता है। समस्त भारत की औसत उपज ८ मन चावल प्रति एकड़ जो लगभग १२ मन धान के बराबर है। इस हिसाब से उपज का सात शतांश के लगभग धान तो बीज के लिए ही रखना पड़ता है। शेष का चावल बनता है।

धान से चावल कई रीतियों से निकाला जाता है। कृषकों की स्त्रियाँ लकड़ी या पत्थर के ओखल में मूसल से कूटकर धान से चावल निकाल लेती हैं और हाट बाजार में जाकर आवश्यकतानुसार बेचकर अन्य आवश्यक वस्तुएं खरीद लाती हैं। एक स्त्री दिनभर में लगभग १५ सेर और दो हुई तो एक मन के लगभग धान कूट डालती हैं। छोटे-मोटे व्यवसायी धान खरीदकर उससे चावल बनाकर बेचते हैं। ऐसे लोग बहुधा ढेकुली से कुटवाते हैं जिसमें एक मजदूर ढेकुली चलाने के लिए और दूसरा धान को उलट-पुलट करने के लिए लगता है। एक ढेकुली से एक दिन में लगभग तीग-चार मन धान कूटा जा सकता है। कहीं-कहीं लकड़ी की

चक्की से भी चावल धान की जुदाई की जाती है। बहुधा ऊपर का पाट मिट्टी भूसे के मिश्रण का ही होता है। इनके सिवाय छोटी-मोटी कलें कारखाने (Rice mills) भी होते हैं, जिनसे उनके आकारानुसार माल तैयार किया जा सकता है। इन चक्कियों या कारखाने के गुमाश्ते जगह-जगह से धान खरीद कर मिलों में भेजते रहते हैं।

जो चावल ओखल-मूसल, ढेकुली या चक्की से तैयार किया जाता है वह हाथ छँटा कहलाता है और जो कारखानों में कलों से छाँटा जाता है उसे कल छँटा कहते हैं। स्वास्थ्य के विचार से हाथ छँटे चावल ही ठीक माने गये हैं। कल से छटने से खाद्योज (बिटामिन्स) की कुछ अंश तक क्षति हो जाती है।

धान को कूटने से कुछ चावल टूटते ही हैं। ऐसी टूट कम हो इसलिए धान उबाल कर सुखा करके भी कूटते हैं। ऐसा करने से पांच-सात शतांश के लगभग टूट कम होती है। जो चावल उबाले हुए धान से प्राप्त होते हैं उन्हें 'ऊसना' और जो बिना उबाले हुए धान से निकाले जाते हैं उन्हें 'अर्वा' कहते हैं। ऊसना को पंजाब तथा उत्तर प्रदेश के कुछ भागों में सेला भी कहते हैं। सिन्ध की तरफ ऐसे चावल को जोश कहते हैं। अंग्रेजी में इन्हें पार बॉइल्ड (Par boiled) कहते हैं। ऐसे चावलों को कीट से भी बहुत कम हानि पहुँचती है।

ऊसना चावल तैयार करने की रीतियाँ

ऊसना चावल चार रीति से तैयार होता है। पहली रीति वह जिसमें धान भिगोकर वैसे ही या बालू के साथ कढ़ाई में गरम करके सुखा लेना। सहारनपुरी सेला ऐसे ही तैयार किया जाता है। इसके लिए चौबीस से अड़तालीस घंटे तक धान अच्छे पानी में भिगोया जाता है और बाद में गरम बालू के साथ भूँजा जाता है, जिसमें इतना पानी उड़ जाय कि धान करीब-करीब सूखे धान-जैसा हो जाय। तीन फुट व्यास की कढ़ाई में एक बार में चार सेर गीला धान डाला जाता है और वह चार-पांच मिनट में

तैयार हो जाता है। इसके बाद दो-तीन दिन तक धूप में सुखा कर कूटते हैं। उबाले हुए धान से जो चावल बनता है उसमें ऐसा चावल सुगन्धित और स्वादिष्ट होता है। दूसरी रीति यह है जिसमें धान को पानी में डाल कर इतना उबालना कि दाने कुछ मुलायम हो जायें या किसी-किसी का छिलका फट जाय। तीसरी रीति मिट्टी या टीन के बर्तन में थोड़े पानी के साथ रखकर हलकी आँच (Smouldering fire) पर चौबीस घंटे तक छोड़ देना होता है। तीनों रीति से तैयार धान को सुखा कर कूटते हैं और धान से चावल को निकाल लेते हैं। चौथी रीति वह है, जो बड़े कारखानों में लायी जाती है। इसमें धान के बोरे पानी में डाल दिये जाते हैं और दो-तीन दिन तक पड़े रहने देते हैं। इससे धान पानी सोखकर कुछ फूल जाता है। बाद में लोहे के हौज में डाल कर एक मिनट के लिए भाफ देते हैं और फिर ठंडे पानी में डाल देते हैं। इस क्रिया के बाद फिर आवश्यकता-नुसार पाँच मिनट से लेकर दस मिनट तक भाफ देते हैं, और फिर सुखा लेते हैं। ऐसे धान का छिलका कलों से ही छुड़ा लिया जाता है। कृषि-विषय-अनुसंधानकारिणी महासभा (इण्डियन काउन्सिल आफ एग्रिकलचरल रिसर्च) की तरफ से प्रयोग करके देखा गया तो तीन दिन भिगोने के पश्चात् पन्द्रह मिनट तक भाफ देना अच्छा पाया गया। इससे अधिक भाफ देने से फिर चावल टूटने लगता है।

अनेक प्रयोगों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि अरवा धान से लगभग साठ शतांश और ऊसना से पाँच-सात शतांश अधिक चावल मिलता है।

चावल का मूल्य उनकी चमक, उसमें चूने जैसे सफेद कणों की उपस्थिति, सुगन्ध, कणों की समानता, आकार, उनकी आयु और पके हुए चावलों के स्वाद पर निर्भर है। कहीं-कहीं रंग पर भी ध्यान दिया जाता है। हैदराबाद की तरफ अमृतसर के पीले चावल जिसपर हल्दी का रंग चढ़ाया जाता है अधिक मूल्य पर बिकते हैं। कहीं-कहीं पीला या लाल गेरू भी रंग चढ़ाने के लिए काम में लाया जाता है। इनके सिवा

चावल में लाल चावल, घुनाये हुए चावल तथा कङ्कर इत्यादि की स्थिति का भी मूल्य पर असर पड़ता है ।

बहुत से चावलों में चमक स्वाभाविक होती है और व्यवसायी लोग तेल, मैदा, संगमूसे का चूर्ण, नमक इत्यादि पदार्थ मिलाकर चावल में चमक लाते हैं । चूने जैसे कण भी चावलों में नहीं होने चाहिए । आकार में सब चावल एक समान होने चाहिए वरना मिश्रण मालूम होगा । खास-खास जाति के चावल विशेष सुगन्धित होते हैं जिनका व्योरा पहले दिया गया है । सुगन्ध विशेषतः नये चावलों में होती है । बहुत से खरीददार थोड़ा चावल पका कर भी देख लेते हैं और स्वाद की भी जाँच कर लेते हैं । चावल जो एक साल का पुराना होता है वह पकता भी अच्छा है और पथ्य के योग्य होता है इससे उसका मूल्य नये की अपेक्षा अधिक रहता है । जिन चावलों में लाल कण, घुनाए हुए कण अथवा कूड़ा-कर्कट या कङ्कर रहते हैं तो उनका मूल्य कुछ कम प्राप्त होता है । जहाँ धान के पौधे ठीक से नहीं कटते बल्कि उखड़ जाते हैं वहाँ के चावल में कंकर आ जाते हैं ।

धान के अन्य पदार्थ

धान से चिवड़ा, परमल या मुरी और लाही ऐसे तीन पदार्थ और बनते हैं जो बाजार में बहुत बिकते हैं । धान को भिगोकर अथवा गरम पानी में भिगोकर उसे कुचल देते हैं और फटक करके छिलका निकाल देते हैं तो चिवड़ा बन जाता है । मुरी भड़भूजे लोग बालू में चावल को भूज कर बनाते हैं । इसके लिए खास जाति के चावल ठीक होते हैं । लाही धान को भून कर बनाई जाती है उसकी खपत दीवाली के समय बहुत होती है । इसकी बड़ी-बड़ी बोरियाँ हर जगह बाजारों में नजर आती हैं ।

उपयोग और गुण

धान की खेती से प्रारंभिक दो पदार्थ मिलते हैं, धान के बीज और

भूसा, जिसे पुआल भी कहते हैं। बीज से हमें अरवा और ऊसना चावल, चिवड़ा, मुरी, लाही और चावल का आटा मिलता है जिससे स्टार्च भी बनाते हैं। इनके सिवाय चावल के ऊपर कुछ-कुछ चिकना-सा धूल जैसा पदार्थ रहता है वह भी मिलता है। ऐसे पदार्थ को 'कन्ना' (Rice dust) कहते हैं और धान का छिलका भी मिलता है।

चावल अरवा हो या ऊसना अधिकांश मनुष्य उसे उबाल कर पका करके काम में लाते हैं। इनसे अनेक प्रकार के पकवान भी बनाते हैं, जैसे मीठे चावल, केसरिया भात, नमकीन पुलाव, खिचड़ी इत्यादि। मद्रास की तरफ उड़द की दाल के साथ पीसकर डोसे, इडली इत्यादि पदार्थ बनाये जाते हैं।

चावल की पोषण-शक्ति

पदार्थ प्रतिशत

	हाथ-छँटा	कल-छँटा
जल	१४.५	१४.४
आमिष जातीय	६.८	६.७
स्नेह	१.४	०.७
खनिज	१.१	०.८
खटिक Ca	०.०१	०.०१
स्फुर P.	०.२१	०.१६
लोहा Fe.	०.००३६	०.००१६
खाद्योज 'धी'	८०	३०

(इन्टर नेशनल युनिट प्रति १०० ग्राम)

उष्णोत्पादक शक्ति १६६ १६४

(केलोरी प्रति छटाँक)

उपर्युक्त दोनों प्रकार के चावल एक ही जाति के धान से बनाये गये थे। इन अङ्कों से ज्ञात होगा कि हाथ छँटे चावल में सिवाय सर्करा जातीय

पदार्थ को छोड़कर सब पोषक पदार्थ अधिक हैं इसीसे हाथ छँटे चावल में पोषण-शक्ति अधिक होती है।

वैद्यक मतानुसार जो चावल जल्दी आ जाते हैं वे हलके, चिकने, त्रिदोष नाशक और ज्वर को नष्ट करनेवाले होते हैं। आमन या शाली चावल, जिनकी फसल देरी से पकती है, चिकने, बलदायक, स्वर को उत्तम करनेवाले, बादीकारक तथा कफकारक होते हैं। नये चावल से पुराने चावल अच्छे होते हैं। नये पकते भी अच्छे नहीं और भारी होते हैं और पाचन-शक्ति भी बिगाड़ देते हैं। यही कारण है कि उपयोग कर्ता पुराने चावल ही ढूँढ़ते रहते हैं।

लाही और मुरीं वैसे ही खाई जाती हैं, ये हल्की होती हैं। चिवड़ा पानी में भिगोकर दूध या दही और चीनी के साथ खाया जाता है। इसे तलकर अन्य चीजों और मसाले के साथ मिलाकर भी खाते हैं।

धान का छिलका—इसे जलाने के काम में लाते हैं। एक खास रीति से जलाया जाय तो इसका कोयला ऊख का रस साफ करने में काम देता है जिससे गुड़ सफेद बनता है।

चावल की 'कन्नी' (Rice dust) भी पशुओं को खिलाई जाती है।

धान का भूसा (पुआल) पशुओं को खिलाया जाता है, परन्तु गेहूँ के भूसे जितना पोषक नहीं होता। पुआल का उपयोग बीज का धान रखने के लिए किया जाता है। इसके रस्से बनाकर उनसे गोल बर्तनों का आकार बना कर उसमें बीज रखते हैं। इसे छप्परों पर ढाल कर साया भी करते हैं। सर्दी के दिनों में गरीब लोग इसपर सोते हैं। जमीन पर फैलाकर इसपर दरियाँ बिछाई जायँ तो गद्दी का-सा काम देता है। इससे चटाइयाँ और जूते के तले भी बनाते हैं। औषधियों की बोतलों, काँच का सामान अथवा चीनी के बर्तन पैक करने के लिए पुआल उत्तम होता है, क्योंकि मुलायम होते हुए भी दूसरे भूसे के समान यह टूटता नहीं। इससे कार्ड बोर्ड भी बनाते हैं। इसपर धरती फूल छत्रक (Mush-

room) की खेती भी की जाती है । काम्पोस्ट बनाकर खाद भी इससे बनाया जा सकता है । खेतों में जब जला दिया जाता है तो भूमि का उर्वरापन भी कुछ हद तक बढ़ जाता है ।

धान की खेती की जापानी रीति

वर्तमान समय में इस रीति का विशेष प्रचार हो रहा है । यह निम्न लिखित है

रोप तैयार करना—चार फुट चौड़ी तीन इंच ऊँची और आवश्यकतानुसार लम्बी नर्सरी बनायें । प्रत्येक 'नर्सरी' या पनीरी के बीच एक फुट चौड़ा मार्ग छोड़ें जिसमें चल फिर कर पनीरी में निराई की जा सके । एक एकड़ के लिए नर्सरी का क्षेत्रफल एकड़ का बीसवां भाग चाहिए । ऐसी नर्सरी में लगभग २० मन गोबर या काम्पोस्ट खाद और १० सेर एमोनियमसल्फेट और सूपर फासफेट का मिश्रण डालना चाहिए ।

बीज की मात्रा—१० सेर प्रति एकड़ बीज को नमक के पानी^१ में डुबो कर देखो और जो नीचे बैठ जाय उन्हें बोओ । बोने से पहले २० मिनट तक पेरेनाक्स^२ नाम की औषधि में डुबाओ । बीज क्यारी में छींटने के बाद उन्हें भाग $\frac{1}{2}$ मिट्टी की तह से ढक दो और पानी आवश्यकतानुसार देते रहो तथा निराई भी करते रहो—

खाद—लगभग २०० से २५० मन प्रति एकड़ गोबर या काम्पोस्ट का खाद और ढाई मन एमोनियम सल्फेट और सूपर फासफेट का मिश्रण (बराबर) रोपने के दो सप्ताह बाद देओ । चार-चार पौधे प्रति स्थान पर लगाओ और एक से दूसरा स्थान १० इंच की दूरी पर रखो । शेष क्रियाएँ साधारण रीति जैसी रहेंगी ।

^१. २.५% (पानी में घोल)

^२. ०.०५% (पानी में घोल)

जई *Oats Avena sterilis*

जई की खेती भारतवर्ष में विशेषतः मिलिटरी फार्मों पर होती है जहां इसका दाना घोड़ों को खिलाया जाता है। सरकारी फार्मों पर भी पशुओं को खिलाने के लिए की जाती है। दूध देनेवाले पशुओं के लिए जई उत्तम होती है। कहीं-कहीं साधारण कृषक भी जई उपजाते हैं और बाजार में बेच लेते हैं जिसे तांगे वाले खरीदते हैं।

जई का पौधा गेहूँ और जव के बीच की ऊँचाई का होता है। कमजोर भूमि में दो-ढाई और अच्छी उपजाऊ भूमि में तीन-साढ़े तीन फुट ऊँचा हो जाता है। पत्ते और डण्डी तो गेहूँ के समान ही होती हैं, परन्तु बाल पर दाने बिखरे हुए भूमर-जैसे लटकते हुए नज़र आते हैं। जई के बीज काले और सफेद दो प्रकार के होते हैं। काले तो कहीं-कहीं नज़र आते हैं। अधिकतर सफेद ही होते हैं।

जलवायु

सबसे उत्तम जई स्काटलेण्ड में होती है। इससे ज्ञात होता है, कि इसके लिए ठण्डा और नमी वाला वातावरण अच्छा होता है। धीरे-धीरे इसकी खेती गरम देशों में भी होने लगी है, परन्तु बीज उतने पुष्ट नहीं होते। हमारे यहाँ भी भूसा तो अच्छा हो जाता है, परन्तु दाना बहुत पतला होता है। वर्षा के विचार से देखा जाय तो बीस-पचीस इंच से अधिक वर्षा वाले स्थानों में जई बिना सिंचाई के पैदा की जा सकती है। जव की भाँति जई जहाँ नमी वाले वातावरण में होती है वहाँ दाना कुछ पुष्ट और कम भूसे वाला होता है।

जमीन और जुताई

जई के लिए दुमट और मटियार दुमट मिट्टी अच्छी होती है। जव

हल्की मिट्टी में हो जाते हैं परन्तु जई की उपज उसमें अच्छी नहीं होती । खरीफ की फसल उठा लेने के बाद हल से जमीन जोत लेनी चाहिए और बाद में एक-दो बार बखर चलाना चाहिए । ढेंले तोड़ने के लिए सोहागा (हेंगा या पठार) भी चलाना चाहिए । जई के लिए जव की अपेक्षा कम पी. एच. वाली मिट्टी भी अच्छी होती है । परीक्षा करके देखा गया तो जहाँ ४.६ पी. एच. वाली मिट्टी में जब बिलकुल नहीं हुए और गेहूँ तीन मन हुए वहाँ जई की उपज लगभग सवा पाँच मन रही ।

खाद और हेरफेर

जई में खाद्य तत्त्व

	जल	ना.	फा. पे.	पो. आ.	चूना
बीज	१०.४३%	१.३७%	.५४	.४०	.०८
भूसा	६.८८%	.५३%	.२८	१.६३	.४३

खाद की गणना के लिए १.४ शतांश ना. बीज में और ०.५ भूसे में मान ली जाय और उपज बीस मन बीज की तथा चालीस मन भूसे की मानकर गणना की जाय तो ग्यारह सेर ना. बीज में और आठ सेर भूसे में पड़ेगी । अर्थात् उन्नीस सेर ना. जिसे मोटे तौर पर बीस सेर ले सकते हैं । इतना खाद पहुँचाने के लिए ढाई मन एमोनियम सल्फेट या दस मन खली देनी होगी । गोबर का खाद इसकी दूनी ना. पहुँचाने के लिए दो सौ मन डालना होगा ।

फा. पे. के खाद के लिए यदि भूमि में ०.१ शतांश से कम फा. पे. हो तो बीस सेर फा. पे. पहुँचे इतना हड्डी का चूर्ण या सूपर फास्फेट देना होगा ।

हेरफेर—कर्नल पेरेट जो कर्नाल फार्म पर कई सालों तक रह चुके और जहाँ जई घोंड़ों के लिए उपजाई जाती थी उनका कहना है कि खाद और सिंचाई देने पर भी लगातार जई की फसल अच्छी नहीं होती । इसका हेरफेर दलहन की फसल के साथ अथवा कपास-जैसी गहरी जड़ वाली फसल के साथ होना चाहिए ।

बीज और बोआई

अन्य फसलों की भाँति जई की उत्तम जातियों को भी वैज्ञानिकों ने नम्बर दे रखे हैं। इण्डियन एग्रिकल्चरल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, देहली से यदि बीज मँगवाये जायँ तो एन. पी. हाईब्रिड नं० १, जल्दी पकनेवाली और एन. पी. हाईब्रिड नं० ३ देरी से पकनेवाली जाति के बीज मँगवाना चाहिए। इन दोनों जातियों में कायमे वाली व्याधि का असर बहुत कम होता है। एन. पी. नं० १ और २ कुछ हद तक पानी का खिंचाव भी बरदाश्त कर लेती है।

एक एकड़ के लिए बीस सेर से एक मन बीज की आवश्यकता होती है। अच्छी उर्वरा भूमि में कम और कमजोर में अधिक बीज गिराने होंगे। बीज बोने के यंत्रों से कतारों में भूमि की उर्वरा शक्ति अनुसार नौ इंच से बारह इंच की दूरी पर बोना उत्तम होगा—वैसे छींट कर भी बोये जा सकते हैं। जई के बोने का समय आश्विन-कार्तिक (अक्तूबर-नवम्बर) है।

निंदाई

जई के पौधों का फैलाव प्रारम्भ से ही ऐसा हो जाता है कि खरपतवार अधिक जमने नहीं पाते और चूँकि फसल पशुओं को खिलाई जाती है इसलिए कुछ हुए भी तो वे छोड़ दिये जाते हैं।

सिंचाई

लेदर महोदय के अनुसन्धानानुसार बीस मन बीज तथा चालीस मन भूसे के लिए लगभग बारह इंच पानी चाहिए। जहाँ आवश्यकता हो वहाँ सिंचाई करनी होगी। जहाँ भूमि में बीज के अंकुर फँकने इतनी भी तरी नहीं हो वहाँ तो बोने के पहले ही सींचना होगा।

जई के शत्रु

इसे पक्षी तो हानि नहीं पहुँचाते परन्तु पशु बहुत खाते हैं सो उनसे

रक्षा करनी चाहिए। कीट भी इसे हानि नहीं पहुँचाते। व्याधियों में कायमे वाली (Smut) व्याधि होती है। तो उसके लिए फार्मेलिन बीज पर छिड़क कर उन्हें चार घंटे तक दबा कर रखना चाहिए। छिड़कने की युक्ति गेहूँ में बन्ट वाली व्याधि के लिए जो युक्ति दी है वही होनी चाहिए।

फसल की तैयारी और उपज

इसकी फसल चैत्र-वैशाख (मार्च-अप्रैल) में तैयार हो जाती है। हरे चारे के लिए तो माघ-फाल्गुन (जनवरी-फरवरी) से भी काम में ला सकते हैं। काटते समय सूखी हुई फसल के बीज बहुत भड़ जाते हैं। इसलिए जिस फसल से बीज लेना हो उसे तो रात्रि में या सुबह में जब नमी रहे तब काटना चाहिए। बीज की उपज लगभग बीस मन और भूसे की चालीस मन तक हो जाती है।

वितरण और व्यवसाय

अधिकतर हरी फसल ही काट ली जाती है। बीज वाली फसल का व्यवसाय थोड़ा-बहुत बीज के लिए तथा पशुओं के दाने के लिए होता है सो जव के व्यवसाय के समान ही होता है।

उपयोग और गुण

जई का चारा घोड़ों के लिए बहुत ही उत्तम माना गया है। दूध देनेवाले पशुओं के लिए भी यह उत्तम होता है। स्काटलेण्ड में मनुष्य भी इसके बीज का उपयोग भोजन के लिए करते हैं। क्वेकर ओट्स के नाम से बाजारों में इसके टीन बिकते हैं। यह पदार्थ एक प्रकार का चिवड़ा होता है। इसे दूध चीनी के साथ खाते हैं। कुछ लोगों का कहना है कि इसका खाना ठण्डे स्थानों के लिए ही उत्तम होता है। गरम देशों में सेवन करने से फोड़े-फुन्सी अधिक होते हैं।

जव, यव, जौ Barley *Hordeum Vulgare*

जव की खेती भारतवर्ष में गेहूँ की खेती के पहले से होती आ रही है। यजुर्वेद में जव की खेती का वर्णन है परन्तु गेहूँ का नहीं। पूजन, हवन इत्यादि धार्मिक कार्यों में भी जव का ही विशेष प्रयोग होता है और चूँकि अधिक उपयोगी तथा प्रिय वस्तुएँ ही हवन के कार्य में लाई जाती थीं इससे भी अनुमान होता है कि जब प्राचीन काल में अधिक उपयोगी धान्य रहा होगा।

जव का पौधा गेहूँ के पौधे-जैसा ही होता है, परन्तु ऊँचाई में कम होता है। साधारणतः ऊँचाई दो-तीन फुट तक की होती है। पत्तों में भी थोड़ा अन्तर होता है, परन्तु साधारण मनुष्य जबतक बाल नहीं निकल आते नहीं पहचान सकते। जव के पत्ते कुछ कम चौड़े और गेहूँ के पत्ते-जैसे गहरे हरे रंग के नहीं होते।

गेहूँ की भाँति जव की विशेष जातियाँ नहीं होती। वनस्पति विज्ञानानुसार थोड़े-बहुत भेद के आधार पर कुछ वर्ग माने जा सकते हैं।

एक वह जाति है जिसके बालों पर जव के दानों की दो कतारें हों, दूसरी में ये कतारें चार और तीसरी में छः होती हैं। एक जाति और भी होती है जिसमें छिलका कम होता है। इनमें से दो कतार वालों के बीज अच्छे होते हैं, परन्तु पैदावार दूसरों की अच्छी होती है। यही कारण है कि बहुधा छः कतार वाले जव की खेती विशेष होती है।

गेहूँ के मामों की भाँति जव के बाज़ारू नाम विशेष नहीं हैं। सिर्फ दानों की बनावट उनके रूप-रंग तथा सफाई इत्यादि पर ही इनका व्यवसाय होता है। चूँकि जव से वारुणी (शराब) बनाई जाती है और अच्छी वारुणी साफ-सुथरे और पुष्ट बीज की बनती है। रंग में जो जव सुनहरी रंग के होते हैं उन्हें वारुणी बनानेवाले पसन्द करते हैं। इस कार्य के

लिए हरे जव ठीक नहीं होते । वारुणी वाले जव में आमिष जातीय पदार्थ की मात्रा भी तुलनात्मक दृष्टि से कम होनी चाहिए और शर्करा जातीय पदार्थ विशेष होना चाहिए । ऐसे गुण दो कतार वाले जव में विशेष होते हैं । इसलिए वारुणी बनानेवाले उन्हें अधिक खरीदते हैं । इनके अभाव में दूसरे जव भी काम में लाये जाते हैं । जो जव बिना नत्रजन के खाद वाले खेतों में उपजाये जाते हैं उनमें आमिष जातीय पदार्थ कम रहते हैं । खाने वाले जव को तो अच्छी उपजाऊ और खाद वाली जमीन में ही उपजाना उत्तम होता है ताकि उनमें आमिष जातीय पदार्थ विशेष हों ।

यहाँ पर यह बतला देना अनुचित नहीं होगा कि व्यावसायिक दृष्टि में गेहूँ या चावल का जितना महत्व है उतना जव का नहीं । यही कारण है कि जव की उपज तथा उसके क्षेत्रफल के अङ्क समस्त भारत के जैसे चाहिए वैसे उपलब्ध नहीं हैं ।

जलवायु

गेहूँ की अपेक्षा जव में शीतोष्णता सहन करने की शक्ति विशेष होती है । ये ठंडे स्थानों में भी हो सकते हैं जहाँ गेहूँ नहीं हो सकते । तिब्बत^१ में १५००० फुट की ऊँचाई पर भी जव होते हैं । उपज के विचार से ऊष्ण वातावरण की अपेक्षा ठण्डा वातावरण उत्तम होता है । वैसे ही जहाँ की हवा में नमी विशेष रहती है वहाँ जव में छिलका कम और दाना पुष्ट होता है । चूँकि इसकी बाढ़ का समय या आयु गेहूँ की अपेक्षा कम होती है, ऐसे स्थानों में जहाँ गर्मी का आगमन जल्दी होने से गेहूँ को हानि पहुँच सकती है वहाँ जव गर्मी को सहन कर अच्छी पैदावार दे जाते हैं । वर्षा के विचार से देखा जाय तो जव २०-२५ इञ्च वर्षा वाले स्थानों में बिना सिंचाई के हो सकते हैं । तापमान के हिसाब से जव अकुरित होने तथा बाढ़ के लिए जैसा तापमान गेहूँ के लिए चाहिए वैसा ही जव के लिए भी उत्तम होता है । पकते समय यदि सर्दी अधिक पड़ जाय

तो गेहूँ पछिया जाते हैं और दाना जैसा चाहिए वैसा उत्तम नहीं होता परन्तु जब तो अच्छे पक जाते हैं।

भूमि और जुताई

जव के लिए दुमट और मटियार दुमट भूमि उत्तम होती है, परन्तु चूँकि गेहूँ से अधिक मूल्य प्राप्त होता है इसलिए उत्तम जमीन में गेहूँ लगाये जाते हैं और हल्की जमीन में जव लगाते हैं। अथवा जब अच्छी जमीन की तैयारी ठीक से नहीं होती या अन्य किसी कारण से गेहूँ के बोने का समय कुछ टल जाता है तो उस स्थिति में जव को अच्छी जमीन मिल जाती है।

पी० एच० के विचार से देखा जाय तो गेहूँ की अपेक्षा जव के लिए अधिक अम्लदार भूमि ठीक नहीं होती। पी० एच० ४.६ वाली मिट्टी में जहाँ गेहूँ की पैदावार ३ मन प्रति एकड़ हुई वहाँ जव हो ही नहीं सके। ५.०, ५.६, ६.८ और ७.७ पी० एच० वाली में ०.६, ०.६, ५.६ और ७.४ मन पैदावार आई। इससे मालूम होता है कि जव के लिए अधिक पी० एच० वाली यानी क्षारदार मिट्टी अच्छी होती है। बहुधा यह देखा गया है कि उस ऊसर भूमि में जहाँ गेहूँ नहीं हो सकते वहाँ जव हो जाते हैं।

जव के पौधे की जड़ें गेहूँ के पौधे की अपेक्षा कम गहरी जाती हैं इसलिए इसके लिए कम गहरी जुताई से काम चल जाता है और चूँकि गेहूँ से पहले या पीछे भी बो सकते हैं आवश्यकतानुसार जुताई के लिए समय निकाला जा सकता है। वैसे पिछली फ़सल हटाने के साथ ही एक बार हल और दूसरी बार बरसात के प्रारम्भ में भी हल चलाकर बरसात में दो-एक बार बखर चला देना चाहिए जिससे घास-प्रात नहीं जमने पावे। उपर्युक्त क्रिया वहाँ होगी जहाँ सालभर में एक ही फ़सल ली जा सकती है। जिन खेतों से खरीफ़ और रबी दोनों फ़सलें ली जाती हैं वहाँ खरीफ़ की फ़सल हटाने के साथ

ही हल से जुताई कर देनी चाहिए। बाद में बखर से काम चल सकता है। जहाँ अँग्रेजी-यंत्र 'हेरो' इत्यादि हों वहाँ बखर का काम 'हेरो' से चल सकता है।

साधारणतः जव बिना सिंचाई के ही पैदा किये जाते हैं। जहाँ सिंचाई से पैदा करना हो वहाँ ब्यारियाँ बनानी होती हैं सो बोने के पश्चात् पारी बनानेवाले हल (Ridging plough) अथवा सादे हल से नालियाँ और पारियाँ बना लेनी चाहिए ताकि बोने में असुविधा न हो।

खाद्य

जव में खाद्य तत्वों की मात्रा

	जल	ना.	फा. पे.	पो. आ.	खटिक
अनाज	१४.५	१.६०	५.६	२.७	०.१
भूसा	१४.३	६.४	१.६	१.०७	३.३

ये अंक भी जॉनसन साहब की पुस्तक से लिये गये हैं। इनमें से ना० और फा. पे. के अंक जिनसे विशेष प्रयोजन है भारतीय जव के अङ्कों से मिलाये गये तो कुछ ही कम निकले। ना० की मात्रा पतले छिलके वालों में कुछ विशेष होती है तो मोटे वालों में कुछ ही कम। कानपुर के जव में ना० की मात्रा १.३ शतांश, आगरे वाले में १.३६ शतांश तथा पेशावर वाले में १.५५ शतांश निकली^१। लेखक के छः साल के प्रयोगों में, जो पूसा में किये गये थे। उनमें औसत मात्रा १.५७ शतांश दाने में और ०.६४ शतांश भूसे में मिली। जल इनमें १० शतांश के लगभग था।

जव की औसत उपज प्रति एकड़ ६ मन समस्त भारत के अंकों पर पड़ती है।

जव में दाने और भूसे की निष्पत्ति १:१.५ के लगभग रहती है। इस

हिसाब से १० मन दाने के साथ १५ मन पैदावार भूसे की हुई। ना० की मात्रा १*६ शतांश दाने में तथा ०*६ शतांश भूसे में मानकर गणना की जाय तो लगभग १० सेर ना० प्रति एकड़ पड़ी।

जव की उपज कहीं-कहीं अच्छे खेतों में उपर्युक्त पैदावार से दुगुनी भी मान ली जाय तो २० मन जव के तथा ३० मन भूसे के लिए २० सेर ना० चाहिए। गेहूँ के खाद के विवरण के साथ इसकी तुलना की जाय तो ज्ञात होगा कि १५ मन गेहूँ की पैदावार के लिए जितना खाद चाहिए उतना २० मन जव की पैदावार के लिए चाहिए अर्थात् अधिक-से-अधिक १८० मन गोबर का खाद अथवा ६ मन खली का खाद या दो मन एमोनियम सल्फेट का खाद चाहिए।

जिस भूमि में ०*१ शतांश से कम फा. पे. हो उसमें लगभग २० सेर से २५ सेर फा. पे. पहुंचे इतना खाद हड्डी के चूरे के रूप में या सूपर फास्फेट के रूप में डालना चाहिए।

वैसे बहुधा देखा गया है कि जव से अगली फसल को ही खाद देना ठीक होता है। ऐसा करने से अच्छे जव पैदा होते हैं।

हेर-फेर—जव के साथ कई स्थानों में किराओ, सरसों, चना इत्यादि बोये जाते हैं और कई जगह गेहूँ के साथ भी जव बोते हैं। ऐसे मिश्रण जहाँ बोये जाते हैं वहाँ हेर-फेर अधिक वर्षों बाद किया जाता है। जब अकेली फसल बोनी होती है गेहूँ का हेर-फेर जिस रीति से होता है उसी भाँति जव का भी होना चाहिए।

बीज और बोआई

गेहूँ की भाँति जव की अनेक जातियाँ नहीं हैं। वनस्पति विज्ञान-वेत्ताओं ने जो जातियाँ निकाली हैं उनके नाम नहीं हैं, उन्हें नम्बर दे रखे हैं। इसलिए प्रान्तीय कृषि विभागों से परामर्श लेकर जाति चुन लेनी चाहिए। यहाँ पर कुछ मुख्य प्रचलित जातियों के नम्बर दिये जाते हैं और सम्भव है दो-एक साल में और भी अच्छी जातियाँ

निकल आवें इसलिये कृषकों को चाहिए कि कम-से-कम अच्छे बीज के लिए अपने निकटवर्ती सरकारी बीज गोदाम से ही उनकी सम्मति लेकर बीज खरीदें।

इस वक्त उत्तर प्रदेश तथा बिहार दो मुख्य जव उपजाने वाले प्रान्त हैं, उनके लिए एन. पी. नं० २१ बहुत अच्छी जाति मानी गई है। अच्छे खेतों में खाद और सिंचाई के आधार पर २०-२५ मन पैदावार प्रति एकड़ हो जाती है। खाने के लिए यह बहुत अच्छी जाति है। बारूणी के लिए उतनी अच्छी नहीं है, क्योंकि इसका बेंगनी रंग शराब में आ जाता है। ऐसे कार्य के लिए सी० २५१ नम्बर की जाति उत्तम है। इनके सिवाय टी० ३५/८४ और ३५/८६ सिंचाई वाले स्थानों के लिए और ३५/४४ तथा ३५/२४ बरानी खेतों के लिए अच्छी पाई गई है।

गेहूँ के बीज की मात्रा में जितना अन्तर भिन्न-भिन्न स्थानों में पाया जाता है वैसा जव में नहीं है। साधारणतः लगभग ३० सेर बीज प्रति एकड़ बोना चाहिए। वैसे कहीं-कहीं पञ्जाब में २४ सेर ही डालते हैं तो गुजरात की तरफ मन-सवा मन भी बोये जाते हैं। परन्तु यदि बीज अच्छे हों तो ३० सेर ही काफी होंगे। जव कहीं-कहीं गेहूँ के साथ बोये जाते हैं उस स्थिति में बीज की मात्रा कम होगी। जव के साथ जब किराओ, चना, सरसों इत्यादि बोये जायें तो उस स्थिति में भी चार-पाँच सेर जव के बीज कम डालकर दूसरे बीज मिला देते हैं।

जहाँ ज़मीन में तरी कम हो वहाँ सिंचाई द्वारा पानी देकर ज़मीन जब बोने योग्य हो जाय बखर या हेरो से जोतकर बो देना चाहिए। गेहूँ की भाँति जव भी सीडड्रिल या नाली वाले हल से बोये जाते हैं। हल चलाकर उसमें बने हुए चांस में भी बीज गिराकर बो सकते हैं। अधिक तरी वाली भूमि में छोटकर भी बोये जाते हैं। यदि कतारों में बोया जाय तो कतारों में ६ इञ्च का अन्तर काफी होगा। जव गेहूँ की अपेक्षा हल्की ज़मीन में बोये जाते हैं इसलिए अधिक अन्तर रखने से पैदावार

अधिक वर्षा वाले स्थानों में जव बिना सिंचाई के हो सकेंगे। इससे कम वर्षा वाले स्थानों में अच्छी पैदावार के लिए जव की सिंचाई करनी होगी।

जव के शत्रु

जव को खेतों में हानि पहुँचानेवाली व्याधियाँ तीन-चार हैं, परन्तु अधिक हानि कायमे वाली हैं जिसके लिए गरम पानी में भिगो कर बीज को सुखा करके रखना चाहिए। प्रयोग की रीति गेहूँ के वर्णन में दी गई है। पशु-पक्षी जव को विशेष हानि नहीं पहुँचाते क्योंकि इसके बाल की सींक अधिक चुभने वाली होती है। दाना भी भूसे से जल्दी पृथक नहीं होता और तीसरा कारण यह भी है कि जहाँ जव की खेती होती है वहाँ गेहूँ की भी होती है सो गेहूँ को छोड़ कर पक्षी जव पर नहीं गिरते। गोदाम में घुन से हानि पहुँचती है सो उसके लिए जव को खूब सुखाकर रखना चाहिए और गोदामों अथवा खत्तियों को कीट रहित करके भरना चाहिए।

फसल की तैयारी और उपज

जव की फसल पत्ते सूखने पर ही तैयार मानी जाती है। पूर्ण पककर सूख जाने पर भी गेहूँ के बीज की भाँति इसके बीज नहीं भड़ते क्योंकि डण्ठल के साथ दानों की पकड़ मजबूत होती है। उष्णता प्रधान स्थानों में बोने के समय से चार-पाँच महीने में तथा पञ्जाब जैसे कुछ ठण्डे स्थानों में पाँच-छः महीने में पक जाते हैं। गेहूँ से इसकी फसल पन्द्रह-बीस दिन पहले काट ली जाती है। बिहार तथा उत्तर प्रदेश के पूर्वी भागों में चैत्र (फरवरी-मार्च) में कट जाती है। पश्चिमी उत्तर प्रदेश या पञ्जाब में वैसाख (मार्च-अप्रैल) तक कटाई चलती रहती है।

जिस प्रकार गेहूँ हँसुए से काटे जाते हैं उसी भाँति जव की कटाई भी होती है और पूले जङ्गली खजूर के चीरे हुए पत्ते, मूँज की रस्सी,

बाँस की पतली छड़ियाँ या खरपतवार से बाँध दिए जाते हैं। एक एकड़ की जव की कटाई के लिए पाँच-छः मजदूर लगते हैं। यदि खेत काफी बड़े हों और काटनेवाली मशीन और ट्रैक्टर का प्रबन्ध हो तो उससे भी फसल काटी जा सकती है।

काटने के पश्चात् जव खलिहान में लाये जाते हैं और वहाँ पर ढेरी लगा दी जाती है। यदि गाहनी और उड़ावनी वाली मशीन हो तो उससे दाना-भूसा जल्दी पृथक् किया जा सकता है। उसके अभाव में गेहूँ की भाँति बैलों के पाँव तले कुचलवाकर ही गहाई हो सकती है और हवा में उड़ा कर दाना-भूसा अलग-अलग किये जाते हैं। चार जोड़ी बैल से दो एकड़ का माल सात-आठ घंटे में तैयार हो जाता है। उड़ावन के लिए तीन मजदूर लगते हैं। यदि हवा ठीक से चलती रहे तो आधे दिन में दो एकड़ का माल तैयार हो जाता है।

उपज—समस्त भारत की उपज देखी जाय तो गेहूँ का पाँचवाँ हिस्सा जव का पड़ता है। प्रति एकड़ की पैदावार भूमि की जाति और समयानुकूल वर्षा पर निर्भर है। यदि बाढ़ के दिनों में एक-दो वर्षा हो जाय तो उपज बहुत अच्छी हो जाती है। उसी भाँति सिंचाई से भी उपज बढ़ जाती है। बरानी खेतों में आठ-दस मन तथा सिंचाई वालों में औसत उपज चौदह-पन्द्रह मन तक हो जाती है। दाने-भूसे की उपज बरानी खेतों में ड्योढ़ी और सिंचाई वालों में पीने दो गुनी मान लेनी चाहिए।

वितरण और व्यवसाय

गेहूँ के तैयार होते ही जैसी उनपर अनेक आँखें आ गड़ती हैं जव पर ऐसा नहीं होता। जव की माँग तो ग्रामीण कार्यकर्ता द्वारा उसी वक्त होती है जब कृषकों के यहाँ गेहूँ की उपज नहीं होती। माँगनेवाले भी जव कम मांगते हैं इसलिए जव का प्रारंभिक वितरण कम होता है। बीज के लिए उपज का लगभग आठ-दस शतांश भाग रख लिखा जाता है। शेष में से

कुछ तो कृषक अपने खाने के लिए और कुछ पशुओं के खिलाने के लिए रख लेते हैं। बचे हुए में से कुछ ऋण-दाता साहूकार ले जाते हैं या मंडियों में बेचा जाता है। मंडियों का चुकारा, आढ़त, दलाली, हमाली, पत्तेदारी, चौकीदारी, धर्मादा, इत्यादि तो गेहूँ-जैसे ही पड़ते हैं। चूँकि जव गेहूँ की अपेक्षा सस्ता बिकता है और अधिकांश कृषकों के पास होता भी थोड़ा ही है इसलिए अधिक भंभट में न पड़ कर स्थानीय खरीददारों के हाथ ही जव की बिक्री बहुत होती है। अच्छी जाति वाले जव जिनका दाना एक समान हो, जो सुनहरे रंग के हों, जिनमें आमिष जातीय पदार्थ की मात्रा कम हो ऐसे जव बारुणी बनानेवालों के गुमास्ते खरीद कर ब्रम्हरी (बारुणी बनाने के कारखाने) में भेज देते हैं।

उपयोग और गुण

जड़ों को छोड़ कर जव के सब अङ्ग काम में लाये जाते हैं। बीज पर चिपका हुआ जो छिलका रहता है उसे छुड़ाने के लिए जव को ओखली में कूटना पड़ता है। बाद में बीज का आटा बनाकर रोटी बनाई जाती है। जव की रोटी बहुधा गरीब लोग ही खाते हैं। जव को भूँज कर उसका सत्तू भी बनाया जाता है जो चने के सत्तू की अपेक्षा ठण्डा होता है। जव का भूसा पशुओं को खिलाया जाता है। जव को भिगो कर उनसे अंकुर फिकवा कर सुखा लेते हैं और बाद में उनसे शराब बनाते हैं। गूदा शराब के काम में आता है। अंकुर और खोखले पशुओं को खिलाये जाते हैं। जव में लगभग १२% छिलका और उतना ही चोकर रहता है। ३% शतांश के लगभग अंकुर और ७३% के लगभग आटा रहता है।

वैद्यक मतानुसार जव कषैले, शीतल, सूखे, अग्निदीपक, बलदायक और स्वर को उत्तम करनेवाले होते हैं। चर्मरोग, खून विकार तथा कफ-पित्त का नाश करते हैं। प्रमेह रोग में भी इनका सेवन अच्छा होता है।

जव में पोषक द्रव्य

जल	१२.५%
मांसोत्पादक	११.५%
स्नेह	१.३%
खनिज द्रव्य	१.५%
तन्तु युक्त	३.६%
सर्करा युक्त	६६.३%
खटिक	०.०३%
फा (P.)	०.२३%
लोहा	०.०३७%
विटामिन बी.	१४० युनिट
कैलोरी प्रति छटांक	१६०

इन अङ्कों की तुलना गेहूँ के अङ्कों से की जाय तो ज्ञात होगा कि इनमें तन्तु युक्त पदार्थ की मात्रा कुछ अधिक है और इतनी ही मात्रा सर्करा युक्त पदार्थों की कम है। थोड़ी-थोड़ी मात्रा में स्फुर, लोहा और खटिक भी कम है। बाकी की मात्रा गेहूँ की मात्रा के समान ही है।

: ५ :

ज्वार *Juar Sorghum Vulgare*

क्षेत्रफल तथा उपज के विचार से अनाजों में पहला स्थान चावल का दूसरा गेहूँ का और तीसरा ज्वार का है। ज्वार जल्दी पच जाती है। इसमें पोषण-शक्ति चावल से अधिक और गेहूँ के बराबर या कुछ अंश में अधिक ही कह सकते हैं। इन गुणों को देखते हुए ज्वार का क्षेत्रफल बहुत अधिक होना चाहिए था, परन्तु एक तो इसका स्वाद गेहूँ-जैसा नहीं होता, दूसरे इसके पकवान भी गेहूँ के पकवान जितने नहीं होते और तीसरी बात यह है कि एक प्रमाणित वर्षा से न्यूनाधिक होने से ज्वार की उपज ठीक नहीं होती। इन्हीं कारणों से इसकी खेती का विस्तार जैसा चाहिए वैसा नहीं है। ज्वार का पौधा आधे इंच से एक इंच व्यास का और सात-आठ फुट से लेकर दस फुट ऊँचा होता है। रबी ज्वार का पौधा लगभग पाँच फुट ऊँचा होता है। पत्ते सीधी धारी वाले डेढ़-दो फुट लम्बे और दो-तीन इंच चौड़े होते हैं। बाल (भुट्टे) जो पौधों के सिर पर निकलते हैं ढीले (कुछ बिखरे हुए) या ठोस होते हैं। अधिकांश का दाना खुला हुआ रहता है कुछ का पुट-पत्र में छिपा हुआ रहता है। ज्वार के पौधों में भूमि से कुछ ऊपर लेकिन उसके निकट वाले भाग से सहायक जड़ें निकलती हैं जिनसे भूमि के साथ पौधों की पकड़ अच्छी हो जाती है और साधारण हवा से पौधे गिरने नहीं पाते।

ज्वार की जातियाँ

वनस्पति विज्ञानानुसार देखा जाय तो भारत में होनेवाली ज्वार की भी एक सौ से अधिक जातियाँ निकलेंगी; परन्तु हम मुख्य-मुख्य जातियों का विभाजन दो भागों में करेंगे। पहली वे जातियाँ जिसकी ज्वार खाने के काम में लाई जाती है और दूसरी वे जिनकी चरी पशुओं को खिलाई

जाती है। कुछ खाने वाली जातियाँ ऐसी भी हैं जो घनी बोई जायं तो चरी का काम देती हैं।

खानेवाली ज्वार का दाना मोटा और रंग में सफेद या मोतिया होता है। स्वाद तथा पोषण-शक्ति के हिसाब से देखा जाय तो मोतिया ज्वार अच्छी होती है। कोई-कोई ज्वार पीली भी होती है।

चरी वाली ज्वार का बीज छोटा होता है। बहुधा बीज के साथ पुट-पत्र चिपके हुए रहते हैं जिनका रंग सफेद, लाल या काला होता है उसीसे ज्वार का रंग वैसा ही नज़र आता है, यद्यपि बीज का रंग सफेद और मोतिया होता है। चरी वाली ज्वार का पौधा पतला और अधिक पत्ते वाला होता है।

ज्वार का व्यापारी वर्गीकरण

ज्वार बम्बई, मद्रास, मध्यप्रदेश और उत्तर प्रदेश में ही विशेष होती है। इसलिए ज्वार के प्रचलित नाम जो इन प्रान्तों में हैं उनका ही वर्णन, यहाँ दिया जाता है। इनमें भी मद्रास के नाम ऐसे हैं कि यहाँ देने न देने से कोई लाभ-हानि नहीं होती। इसलिए अन्य तीन प्रान्तों वाली ज्वार का वर्णन ही ठीक जँचता है।

मध्य प्रदेश और बरार में रामकेल और सावनेर नाम की ज्वार की खेती विशेष होती है। रामकेल सावनेर से कुछ दिन पहले पकती है। इसका भुट्टा ढीला होता है और बीज सफेद होता है। सावनेर का दाना मोतिया रंग का होता है और भुट्टा ठोस होता है। यह ज्वार पहले की अपेक्षा पन्द्रह-बीस दिन बाद पकती है। इनके सिवाय देरी से पकनेवाली में धामणा और जल्दी पकनेवाली में लामकनसी, डेथा, बेथरा, इत्यादि हैं।

मध्य भारत में मोतिया रंग की ज्वार को गुगल और सफेद को धोली कहते हैं। होरड़े^१ के लिए चिकनी और माखन-मिश्री नाम की

^१ आग से भुने हुए हरे भुट्टे के बीज।

ज्वार अच्छी होती है, लेकिन ये बहुत कम बोई जाती है। पहली का दाना चिकना और बहुत मीठा होता है। दूसरी का दाना भी मीठा होता है। इसके बीज पुट-पत्र में छिपे रहते हैं। भुट्टों को आग पर भूँजकर हाथ से मलने से दाना निकल आता है। दूसरी ज्वारों की भाँति दाना छुड़ाने के लिए एक खास रीति से कपड़े में लपेटकर ज्वार ही के डंडे से जिसमें, चोटें हलकी रहें, पीटने की आवश्यकता नहीं होती।

बम्बई की तरफ साठ दिन में पकनेवाली को 'साठी', सफेद और चपटे दानेवाली को 'चपटी', गोल दानेवाली पीले रंग की 'पीरियो', छोटे दानेवाली जिसका दलिया कुछ सुगन्धित होता है 'आम्बे मोहर', सफेद मोटे दानेवाली को 'दगड़ी' कहते हैं। होरड़े के लिए 'मोगर' उत्तम होती है। दक्षिण बम्बई की तरफ उपर्युक्त ज्वारों के सिवाय शालू और रीगणी नाम की ज्वारे रबी की फसलों में होती हैं। शोलापुरी और हुंडी नाम की ज्वार भी उधर ही होती हैं।

उपर्युक्त ज्वारें चार महीने से लेकर पाँच-छः महीने में तैयार होती हैं। जहाँ खरीफ और रबी दोनों ज्वार होती हैं वहाँ खरीफ की अपेक्षा रबी ज्वार अच्छी होती है। बीज ही नहीं बल्कि कड़बी (डण्ठल) भी उत्तम होती हैं।

चरीवाली ज्वार—खानेवाली ज्वारे घनी बो देने से चरी का काम दे देती हैं। इसके लिए बहुधा रामकेल बोई जाती है। परन्तु कुछ जातियाँ ऐसी हैं जो चरी के लिए ही ठीक होती हैं।

पवनबन्दी, अरगढ़, मोतीचूरा, सुडियाँ, लंगूर, कालबोंडी, उतावली नाम की ज्वारे मध्य प्रदेश में चरी के लिए बोई जाती हैं।

इन सबमें सुडिया बहुत जल्दी पकती है। साठ दिन में तैयार हो जाती है। इसकी उपज भी अच्छी होती है। पशु भी इसे बड़े प्रेम से खाते हैं। इससे मालूम होता है यह उनके लिए बड़ी स्वादिष्ट होगी। इसमें एक विशेष गुण यह है कि इसे कभी भी बो सकते हैं और सिंचाई से अकाल के समय में पशुओं के लिए जल्दी चारा दे देती है। अधिक

वर्षा वाले स्थानों में यह ठीक नहीं होती। उपज के विचार से कहीं-कहीं निलवा भी अच्छी होती है। परन्तु इसकी चरी सुडियाँ-जैसी स्वादिष्ट नहीं होती और इसी कारण से सुडियाँ की अपेक्षा यह सस्ती बिकती है। शालू दक्षिण बम्बई की तरफ रबी में चरी के लिए लगाई जाती है।

उपयुक्त ज्वारों में कालबोंडी का पुटपत्र काला होता है और बाकी का सफेद होता है। मोतीचूरा का भुट्टा कलंगी जैसा बिखरा हुआ होता है। सुडियाँ, शालू, उतावली का ढीला होता है। कालाबोंडी का भुट्टा ठोस होता है। अपेक्षाकृत सुठियाँ, शालू और कालबोंडी का दाना बड़ा होता है।

जलवायु

ज्वार के ऊपर जलवायु का बड़ा प्रभाव पड़ता है। बोने के कुछ दिन बाद से लगातार वर्षा होती रहे तो ज्वार गल जाती है, पौधे छोटे रह जाते हैं और पीले पड़ जाते हैं। प्रारम्भ में ठीक-ठीक वर्षा हुई और वर्षा ऋतु के अन्त में कम हुई तो पौधे ऐसे कमजोर हो जाते हैं कि पोटे (अन्तिम पत्ते) में से भुट्टे बाहर नहीं फेंक पाते। पौधे कुम्हलाये से नज़र आते हैं और उपज बहुत गिर जाती है। ज्वार की बहुत अच्छी उपज के लिए तीस से पैंतीस इञ्च वर्षा वाले स्थान अच्छे होते हैं। वर्षा का वितरण भी ठीक होना चाहिए। एक साथ बहुत हो जाय तो वह लाभप्रद नहीं होती। पोतों के निकलने के पहले कुछ वर्षा हो जाय तो ज्वार को बहुत लाभ होता है और यदि फूल आने पर होवे तो हानि होती है। फूल धुल जाते हैं और गर्भाधान ठीक नहीं होने से बीज नहीं बन पाते। बीस से तीस इञ्च वाले स्थानों में भी वितरित वर्षा हुई और खेतों की जुताई ठीक हुई तो ज्वार अच्छी हो जाती है। बीस इञ्च से कम वर्षा वाले स्थानों में ज्वार के बदले बाजरा लेना ही ठीक होगा।

बीज के अंकुरित होनेके लिए भूमि में तरी—कानितकर^१ महोदय

1 Dry Farming in India, 1944 p. 202 Sci. Monograph No. 15. I. C. A. R.

अपनी पुस्तक में बतलाते हैं कि गहरी काली और कम गहरी हलकी मिट्टी में परीक्षा की गई तो तरी का निम्नलिखित प्रभाव पाया गया ।

शोलापुरी मिट्टी में अंकुरित बीज

शतांश जल भूमि में	भारी मिट्टी	हलकी मिट्टी
१५	×	×
२०	×	४०%
२५	×	७०%
३०	×	८०%
३५	६०%	१००%
४०	६०%	१००%

इन अंकों से ज्ञात होता है कि भारी मिट्टी में बीज को अंकुरित होने के लिए अधिक जल चाहिए, कारण कि मिट्टी जल्दी जल नहीं छोड़ती । उसी भांति भारी मिट्टी का बहुत-सा जल पौधों के काम में भी नहीं आता ।

तापमान के हिसाब से देखा जाय तो अंकुरित होने तथा प्रारम्भिक बाढ़ के लिए उष्ण और तरी वाला वातावरण चाहिए । पकते समय वातावरण कुछ ठण्डा और सूखा ठीक होता है । कुछ ज्वार ऐसी भी होती है जो गर्मी में ही बढ़ती है । कहीं-कहीं खरीफ, रबी और गर्मी की फसले ऐसी तीन फसलें होती हैं जो उनके लिए जातियाँ भी अलग-अलग होती हैं । चरी की ज्वार के लिए कुछ जातियाँ ऐसी हैं, जो कभी भी हो जाती हैं । इसका तात्पर्य यह है कि वर्षा का जैसा अच्छा बुरा असर पड़ता है तापमान का असर उस हद तक नहीं पड़ता ।

भूमि और जुताई

ज्वार के लिए दुमट मिट्टी ही अच्छी होती है । विशेषतः काली मिट्टी, जिसमें कपास अच्छा होता है, उसमें ज्वार भी अच्छी होती है । भारी मटियार में पौधे के आस-पास बरसात में पानी लगा रहने से फसल बिगड़ जाती है । पौधे पीले पड़ जाते हैं और छोटे-छोटे

रह जाते हैं। दूसरी ओर बलुआ में पानी की कमी से फसल अच्छी नहीं होती। बलुआ दुमट और मटियार दुमट में कुछ ज्वारे अच्छी होती हैं। देरी से पकनेवाली के लिए मटियार दुमट और जल्दी पकनेवाली के लिए बलुआ दुमट मिट्टी ठीक होगी। पी० एच० के विचार से देखा जाय तो ज्वार के लिए कम पी० एच० वाली मिट्टी ठीक नहीं होती। दूसरी ओर बहुत पी० एच० वाली में भी ज्वार नहीं होगी। सात पी० एच० वाली से आठ पी० एच० वाली मिट्टी अच्छी होती है।

जुताई

उत्तर भारत में जहाँ वर्षारम्भ के कुछ दिन बाद ज्वार बोई जाती है वहाँ गर्मी में एक बार हल और दो बार बखर चला देना चाहिए। काली मिट्टी, जो गर्मी में बहुत फट जाती है, उसमें तो गर्मी की जुताई की आवश्यकता नहीं है। हल का काम प्रकृति स्वयं कर देती है। वहाँ तो मेरे मतानुसार पिछली फसल के उठाते ही जो बहुधा ज्वार या कपास की होगी, एक बार जुताई करके डण्ठल चुनवाकर जलावन के काम में ले आना चाहिए और बाद में खेतों को वैसे ही छोड़ देना ठीक होगा। गर्मी में बार-बार बखर चलाने से ऊपर की उपजाऊ मिट्टी दरारों में गिर जाती है और ज्वार को लाभ पहुँचाने वाले तैयार खाद्य तत्व नीचे चले जाते हैं। चूँकि ज्वार बहुधा वर्षारम्भ के कुछ दिनों बाद ही बोई जाती है, इसलिए पहली वर्षा से जब मिट्टी कुछ ढीली हो जाय उस समय हल और बाद में सब अंकुरित घासपात को मारने के लिए एक-दो बार बखर चला दिया जाय तो उत्तम होगा। जहाँ की मिट्टी काली फटने वाली न हो वहाँ पिछली फसल उठाने के बाद हल चला देना चाहिए और गर्मी में एक-दो बार बखर चला देना लाभप्रद होगा। जहाँ रबी ज्वार ही ली जाती है वहाँ बरसात में एक बार हल और दो बार बखर चला देना चाहिए और जहाँ गर्मी में बोयी जाय वहाँ भी बोन के पहले एक बार हल और दो बार बखर चलाना होगा। जहाँ बखर न हो और

बैल छोटे हों वहाँ हल ही तीन चार बार चलाना पड़ेगा ।

जुताई के पश्चात जहाँ पानी देना हो वहाँ नालियाँ और क्यारियाँ बना लेनी चाहिए ।

खाद और फसल का हेरफेर

ज्वार में खाद्य-पदार्थों की मात्रा—

	जल	ना०	फा० पे०	पो० आ०	चूना
बीज	१०.८६	१.६६	०.६४	०.५०	०.४
कड़वी	१२.६४	०.४८	०.२३	२.१७	५.८
चरी	१०.६७	०.५०	०.२३	२.१७	३.८

मध्य प्रदेश में अकोला ज्वार का केन्द्र है । वहाँ की भूमि ज्वार के लिए बहुत अनुकूल है, इसलिए खाद्य के तत्त्व की गणना के लिए वहीं की उपज लेनी ठीक होगी ।

अकोला फार्म पर कई ज्वार के प्रयोग^१ हुए, परन्तु हम यहाँ पर राम-केल और सावनेर जो मुख्य जातियाँ हैं उन्हीं का विचार करेंगे । लगातार पाँच साल के प्रयोगों का औसत देखा गया तो रामकेल की उपज १४०८ पौंड और सावनेर की १४१४ पौंड पड़ी जो करीब-करीब बराबर ही है । मन में गणना की जाय तो १७.१ मन प्रति एकड़ पड़ती है । कड़वी (ज्वार के बाल रहित सूखे पौधे) की औसत उपज ६४.६ मन पड़ी । यदि १७ मन उपज बीज की और ६५ मन उपज कड़वी की मानकर उपर्युक्त अन्वेषण के अंकों से गणना की जाय तो लगभग ३० सेर ना० प्रति एकड़ पड़ेगी । इस मात्रा पर खाद की गणना की जाय तो ३.७५ मन एमोनियम सल्फेट या १५ मन खली का खाद देना होगा । गोबर का खाद देना हो तो ना० की दुगुनी मात्रा के लिए तीन सौ मन गोबर का खाद देना चाहिए ।

उपर्युक्त उपज कुछ विशेष कही जा सकती है; क्योंकि अकोला ज्वार का केन्द्र है। वहाँ की भूमि ज्वार के अनुकूल है और परीक्षा सरकारी फार्म की है जहाँ की अच्छी देखभाल से उपज अच्छी होती ही है। इन सब बातों के लिए कुछ अंश छोड़ भी दिया जाय और साधारण उपज दो तिहाई ही मानी जाय तो भी लगभग २५ मन एमोनियम सल्फेट या १० मन खली या २०० मन गोबर का खाद चाहिए। यदि चरी की उपज १०० मन प्रति एकड़ ही मान कर गणना की जाय तो इतना ही खाद उसके लिए भी लगेगा।

यद्यपि अच्छी उपज तथा भूमि की उर्वरा शक्ति बनाये रखने के लिए इतना खाद अवश्य देना होगा, परन्तु सस्ती बिकने के कारण ज्वार की फसल से आमदनी इतनी कम होती है कि खाद में काफी द्रव्य लगा देना सम्भव नहीं—विशेषतः साधारण समय में। मँहगाई के समय में कुछ हद तक लगाया जा सकता है। उपर्युक्त कारण से बहुधा ज्वार को खाद नहीं दिया जाता। इससे पहले वाली फसल को ही दिया जाता है। अथवा फसल के हेरफेर से भूमि की उर्वरा शक्ति बनाये रखते हैं। ज्वार के साथ बहुधा दाल वर्ग की फसलें लगाई जाती हैं जिनसे भी काफी लाभ पहुँचता है। चूँकि ज्वार बरसात में होती है, शहर का कूड़ा कर्कट जो सस्ता मिल सके उसे खेतों में डालकर लाभ उठाना चाहिए। गोबर का खाद भी १०० मन तक डालना उत्तम होगा।

फा० पे० के खाद की गणना की जाय तो लगभग १२ सेर फा० पे० प्रति एकड़ चाहिए, जिसकी तीन गुनी मात्रा पहुँचाने के लिए लगभग ४५ मन हड्डी का चूरा डाला जा सकता है।

उपर्युक्त अङ्क विश्लेषणाङ्कों के आधार पर है। अब जरा प्रयोगात्मक रूप भी देख लें।

ज्वार पर खाद के प्रयोग मद्रास, मध्य प्रदेश तथा मध्य भारत में हुए हैं, जिनका व्योरा वैद्यनाथ महोदय ने अपनी रिपोर्ट में दिया है। उन सब प्रयोगों के निर्णयों पर ध्यान देकर देखा गया तो यही जँचा कि

कहीं-कहीं सौ-सवा सौ मन गोबर का खाद लाभप्रद सिद्ध हो सकता है। दूसरे कृत्रिम खादों से उपज तो अवश्य कुछ बढ़ी, परन्तु आर्थिक दृष्टि से वे लाभप्रद नहीं जँचे। सिर्फ गोबर का खाद ही ठीक जँचा जिसकी मात्रा भी सौ मन के लगभग ही ठीक होगी।

चरी के लिए सीवेज Sewage (गन्दे नाले) का पानी बहुत अच्छा होता है।

कानितकर महोदय की पुस्तक जो १९४४ में छपी है, उसमें हाल के कुछ प्रयोगों का वर्णन है। ये प्रयोग मांजरी और शोलापुर (बम्बई), हगारी (मद्रास) और रोहतक (पञ्जाब) में किये थे। इन सब स्थानों की औसत वर्षा लगभग २० इंच के थी। मांजरी, शोलापुर और बीजापुर में ६० मन प्रति एकड़ गोबर का खाद दिया था, दूसरी जगह की मात्रा इससे दुगुनी थी। कहीं भी खाद लाभप्रद सिद्ध नहीं हुए। इसका खास कारण वर्षा की कमी है। जिन स्थानों में ३०-३५ इञ्च वर्षा होती है वहां खाद से कुछ लाभ होने की सम्भावना है परन्तु वह भी एक सौ मन के लगभग ही देना लाभप्रद हो सकता है।

हेरफेर—ज्वार जहां अधिक होती है उन स्थानों में कपास भी अच्छा होता है इसलिए इसका हेरफेर कपास के साथ ही होता है। जिन खेतों में घासपात विशेष हो जाते हैं उनसे छुटकारा पाने के लिए रबी की फसल से हेरफेर करना होता है, ताकि पड़त खेतों में बरसात की जुताई से घास-पात नष्ट किया जा सके। कहीं-कहीं मूंगफली की फसल के साथ भी हेर-फेर हो सकता है। जहां जंगली जानवरों से मूंग-फली को हानि पहुँचने की सम्भावना न हो, बहुधा ज्वार के साथ अन्य दाल वर्ग की फसलें लगा देते हैं। मध्य भारत में ज्वार के साथ बहुधा मूंग और रहर (तूअर) लगाते हैं। मूंग ज्वार की चौथाई ऊँचाई तक और रहर आधे से तीन चौथाई ऊँचाई तक बढ़ जाती है। गुजरात की तरफ तिल, सेम इत्यादि भी ज्वार के साथ बो देते हैं।

अकोला फार्म पर हेर-फेर के प्रयोगों की जांच में कपास, ज्वार और

मूंगफली का हेर-फेर आर्थिक दृष्टि से विशेष लाभप्रद सिद्ध हुआ है। उससे उत्तरता हेर-फेर कपास, कपास ज्वार और मूंगफली का अच्छा पाया गया अर्थात् दो साल तक कपास, तीसरे साल ज्वार और चौथे साल मूंगफली लेनी चाहिए। तीसरा स्थान कपास, ज्वार के हेर-फेर को मिला। चौथा स्थान कपास, कपास ज्वार को मिला। इससे यह सिद्ध होता है कि ज्वार के साथ-साथ अथवा हेर-फेर में कम-से-कम तीसरे साल एक दाल वर्ग की फसल अवश्य ले लेनी चाहिए।

बीज और बोआई

अन्य फसलों की भांति प्रान्तीय कृषि विभाग वालों ने ज्वार के बीज भी तैयार किये हैं और उन्हें नम्बर दे रखे हैं। कृषि विभाग वालों से उनके बीज प्राप्त करने चाहिए।

बम्बई प्रान्त में एम० ३५-१, नं० ८, पीरियो नं० ५३ और फूल गर पीली और सफेद इत्यादि जातियाँ अच्छी हैं। मध्य प्रदेश में रामकेल और सावनेर की गिनती अच्छी जातियों में है। पहली का दाना सफेद होता है और दूसरी का मोतिया रंग का। रबी के लिए रींगनी सालू। उत्तर प्रदेश में ८ बी० देरी से पकनेवाली, टी० ३ जल्दी आने वाली। मद्रास में अनाज के लिए जे० १०३, नन्दयाल २६।६८, २२३, २२४, टी० १, ए० एस० १०६३, २०६५ और चरी के लिए जे ७५, टी० १२, ए० एस० १०६८ इत्यादि जातियाँ अच्छी मानी गई हैं। मध्य भारत के लिए इन्दौर ३ और इन्दौर ६ और चरी के लिए सुडिया, और इन्दौर न० ३ अच्छी उपज देती हैं। ग्वालियर १२-२, उज्जैन ६ और ८ उत्तरी जिलों के लिए हलकी जमीन ने ६ पीले रंग की, निमाड़ के लिए नं० ८।

जिन कृषकों की आर्थिक स्थिति अच्छी होती है वे तो बीज के लिए खलिहान में ही अच्छे-अच्छे भुट्टे चुनकर बीज वाली ज्वार तैयार कर लेते हैं और स्वयं सम्हाल कर रखते हैं। कुछ लोग साहूकारों से बीज सवाना कर लेते हैं, परन्तु वह सन्तोषजनक नहीं होता। एक तो उसमें मिश्रण

की सम्भावना है और दूसरे अच्छा बुरा सब बीज रहता है। कहीं-कहीं जमींदारों के यहाँ से अच्छा बीज मिल जाता है। जहाँ सरकारी बीज-गोदाम हो वहाँ वहीँ से बीज प्राप्त किया जा सके तो अच्छा है।

अनाज के लिए जो ज्वार बोई जाती है उसका दर पृथक-पृथक स्थानों में पृथक-पृथक है, परन्तु गेहूँ के बीज-जैसा विशेष अन्तर नहीं है क्योंकि कम-से-कम पांच-छः सेर और अधिक-से-अधिक सात-आठ सेर ही बीज गिराया जाता है। जो बीज चरी के लिए गिराते हैं उसकी मात्रा में कुछ विशेष अन्तर है। कहीं-कहीं दस सेर गिराते हैं तो कहीं-कहीं २५ सेर तक भी छीटते हैं। जहाँ छीटकर बोई जाती है वहाँ अधिक बोना पड़ता है। जहाँ बोने के समय में पानी अधिक गिरता हो वहाँ अधिक गिराना होता है। जहाँ मोटे बीज वाली ज्वार जैसे रामकेल, मुडियाँ, कालबोंडी यदि चरी के लिए बोई जायँ तो इनके बीज पन्द्रह-बीस सेर के हिसाब से गिराना चाहिए। मोतीचूरा निलवा इत्यादि जिनका बीज छोटा होता है दस-बारह सेर काफी होंगे।

जहाँ खाने वाली ज्वार के साथ मूंग, तूवर, चंवली, ग्वार, कुलथी, तिल इत्यादि बोये जायँ वहाँ ज्वार का बीज एक सेर कम करके दो-ढाई सेर इनके बीज मिला देना चाहिए।

अनाज वाली ज्वार उत्तर भारत में वर्षारम्भ के कुछ दिन बाद जब कपास और मक्का की बोआई से छुट्टी मिल जाती है तब बोते हैं। उत्तर भारत में ज्वार की खेती मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश, गुजरात तथा मध्य-भारत में विशेष होती है। इन सब स्थानों में आषाढ़ के अन्त तथा श्रावण के प्रारम्भ में बोआई हो जाती है। लगभग १५ जुलाई तक बोने का काम समाप्त हो जाता है। देरी से बोने में भाद्रपद में जब वर्षा अधिक होती है, उस समय यदि पौधे बहुत छोटे रह जायँ तो उनको हानि पहुँचती है। चरी वाली ज्वार तो कभी भी बोई जा सकती है, परन्तु बहुधा इसके बाद दूसरी फसल लेते हैं। इसलिए कई स्थानों में वर्षा के पहले ही सिंचाई से बो देते हैं। जहाँ सिंचाई की सुविधा न हो वहाँ वर्षा के प्रारम्भ में

ही बोना होगा। दक्षिण बम्बई की तरफ ज्वार की तीन फसल होती हैं; खरीफ जिसे भाद्रपद (जुलाई) में और रबी जिसे आश्विन (सितम्बर) में बोते हैं। तीसरी गर्मी में माघ-फाल्गुन (फरवरी-मार्च) में बोई जाती है। हैदराबाद जिसका स्थान क्षेत्रफल के विचार से भारत में दूसरा है वहाँ लगभग ५५ शतांश ज्वार खरीफ में बोई जाती है और ४५ शतांश रबी में बोते हैं। रबी और गर्मी वाली को सींचना होता है। उत्तर भारत में भी गर्मी में ज्वार चरी के लिए बोते हैं तो उसे सींचना पड़ता है। मद्रास में करीब-करीब दक्षिण बम्बई जैसा ही क्रम है।

चरी वाली ज्वार बहुधा छोट कर बोई जाती है। बोने के पश्चात् दतारो या हेरो से मिट्टी में मिला देते हैं। जब कतार में बोना होता है तो नाली वाले हल, तिफन, अरगड़ा या ड्रिल से बोते हैं। कहीं-कहीं हल चलाकर चांस में दाना गिरा देते हैं। ज्वार जल्दी जम जाय इसलिए कहीं-कहीं अंकुरित करके भी बोते हैं। ज्वार को भिगोकर कपड़े में दबाकर रखने से अंकुर फेंक देती है। जहाँ कायमे वाली व्याधि अधिक हो वहाँ ज्वार के साथ गंधक का चूर्ण मिलाकर बोना ठीक होगा। १० सेर बीज में दो तोला गंधक खूब अच्छी तरह से मिला देना चाहिए।

खानेवाली ज्वार तो कतारों में ही बोई जाती है। कतारों में डेढ़ फुट से दो फुट का अन्तर रखना चाहिए। अच्छी उपजाऊ भूमि में दो और कमजोर में डेढ़ फुट का अन्तर ठीक होता है। पौधे से पौधा एक-एक फुट की दूरी पर होना चाहिए। चरी वाली ज्वार कतारों में बोई जाय तो नौ इंच का अन्तर कतारों में और पाँच-छः इंच का अन्तर पौधों में रहना चाहिए।

निदाई और देखभाल

ज्वार में निदाई बहुत करनी होती है परन्तु वह कार्य अन्य फसलों जैसा खुरपी से नहीं किया जाता। इसके लिए बखर के जैसे छोटे यन्त्र जिन्हें डोरा, डुडियां या कड़पा कहते हैं काम में लाये जाते हैं। ये हो

(Hoe) का कार्य करते हैं। एक जूए में दो कड़पे एक साथ लगाते हैं और ज्वार की कतारों के बीच चलाते हैं। इनसे घास-पात उखड़ जाता है। प्रत्येक ज्वार के खेत में हो सके तो तीन-चार बार और नहीं तो दो बार कड़पे अवश्य चलाना चाहिए।

निंदाई के साथ घने पौधों की छँटनी करनी होती है सो पौधे इस रीति से उखाड़े जाने चाहिए जिसमें कतारों में पौधे से पौधे का अन्तर एक फुट हो जाय। ज्वार में कभी-कभी सफेद फूल वाला 'आगिया' नाम का घातक पौधा निकल आता है। यह ज्वार के पौधों से अपना पोषण करता है। ठीक पौधे के धड़ के निकट ही निकलता है और ज्वार की जड़ों का रस खींच लेता है। जब यह बहुत लग जाता है तो ज्वार मुर्झा जाती है और भुट्टे निकलने ही नहीं पाते। यदि प्रारम्भ में ऐसे पौधे दिखें तो उन्हें तुरन्त उखाड़ देना चाहिए, ताकि उनके बीज जमने न पायें। इन्हें टाच^१ से जला दिया जा सके तो और भी अच्छा है।

ज्वार में जब बीज पड़ने लगते हैं उस वक्त पक्षी बहुत हानि पहुँचाते हैं, विशेषतः ठोस भुट्टे वाली ज्वार में हानि अधिक होती है। इसके लिए रखवाला रखना पड़ता है। जहाँ तक बन सके आसपास के सब कृषकों को एक साथ ही ज्वार बोनी चाहिए ताकि सब एक साथ पके और पक्षियों से होनेवाली हानि में बटवारा हो जाय। आगे-पीछे बोने से पक्षियों को भोजन कई दिनों तक मिलता रहेगा और सभी कृषकों को काफी हानि उठानी पड़ेगी।

सिंचाई

उत्तर भारत में गर्मी की ऋतु में जो चरी बोई जाती है उसकी सिंचाई करनी पड़ती है सो आवश्यकतानुसार करनी चाहिए। महीने में कम-से-कम दो बार सिंचना होता है। दक्षिण भारत में रबी

^१छोटे स्टव जैसा एक लेम्प होता है जिसमें हवा तेल भर के जलाने से बड़े जोर की ली फँकता है।

की फसल जो आश्विन-कार्तिक में बोई जाती है उसे दो-तीन सिंचाई देनी होती है। गर्मी में होनेवाली ज्वार को आवश्यकतानुसार सिंचना चाहिए।

लेदर महोदय के अनुसंधानानुसार गेहूँ की अपेक्षा ज्वार को कम पानी लगता है। तीन सौ साठ मन बीज और कड़वी के लिए ५.३ इंच पानी चाहिए अर्थात् इतना पानी उपर्युक्त फसल अपने पत्तों द्वारा बाहर फेंकेगी। उतने ही गेहूँ के लिए ९.३ इंच पानी की आवश्यकता होती है।

कीट और व्याधियाँ

कीट—ज्वार में तितली की जाति के दो-तीन कीट हानि पहुँचाते हैं। परन्तु यह हानि इतनी नहीं होती जिसके लिए खास उपचार किये जायें।

पहला कीट एक पतंग का बाल कीट होता है। मादा पत्तों पर बहुत से अण्डे एक ही स्थान पर देती है, जिनमें से बालकीट निकलकर धड़ की तरफ जाकर उसमें छेद करते हैं। उसीमें कोष भी बनाते हैं और कोष फटने पर तरुण कीट निकल आते हैं। जब ज्वार की फसल तैयार हो जाय और काट ली जाय तो खूंटियों को उखड़वाकर जला देना चाहिए नहीं तो कीट उनमें ही कोष के अन्दर गर्मी में पड़े रहते हैं और बरसात आने पर निकल आते हैं। तरुण कीट रोशनी पर आकर्षित करके भी मारे जा सकते हैं।

दूसरा धड़ छेदक कीट भी पतंग का बालकीट होता है। यह गुलाबी रंग का होता है। इसके आक्रमण से पौधों का ऊपरी भाग सूख जाता है। व्याधि अधिक फैलती दिखे तो ऐसे पौधों को उखाड़कर नष्ट कर देना चाहिए।

छोटे-छोटे पौधों को एक छोटी-सी मक्खी के बालकीट भी हानि पहुँचाते हैं और पौधे मर जाते हैं। मरते हुए पौधों को उखाड़कर जला देना चाहिए ताकि आगे मक्खी की वंशवृद्धि न हो।

फूलों को कुछ भ्रमर भी खाते हैं। इनमें एक तेली नाम के कीट

होते हैं जो तरुण अवस्था में शाकाहारी होते हैं परन्तु वाल्यावस्था में टिड्डा के अण्डे जो भूमि में रहते हैं उन्हें भी खाते हैं। वैसे जड़ों से भी पोषण करते हैं। तेली इसलिए कहलाते हैं कि इनके बदन से एक प्रकार का रस निकलता है, जो यदि शरीर पर लग जाय तो उस स्थान पर फोड़ा हो जाता है। बरसात के दिनों में ये कीट बहुधा रोशनी पर आ जाते हैं।

गोदाम में हानि पहुँचानेवाले घुन होते हैं। उनसे बचाने के लिए गेहूँ के वर्णन में दी हुई रीतियाँ ज्वार को रखने लिए काम में लानी चाहिए।

घातक पौधे—‘आगिया’ इसका वर्णन निंदाई के स्तम्भ में दिया है।

कायमा (Smut)—किसी-किसी पौधे में बीज के भुट्टे के बदले में काला बुरादेवाला भुट्टा निकल आता है जिसे ‘कायमा’ कहते हैं। इसकी एक जाति ऐसी भी होती है जिसमें समूचा भुट्टा काला न होकर सिर्फ कुछ बीज ही काले बुरादे वाले हो जाते हैं। यदि ऐसे पेड़ दिखलायी दें तो उन्हें तुरन्त उखाड़ कर नष्ट कर देना चाहिए। खेत में रहने से उनकी रज (Spores) दूसरे भुट्टों पर जाकर जम जाती है और वैसे ज्वार बोन से फिर व्याधि बढ़ती जाती है। ऐसी व्याधि से बचने के लिए दस सेर बीज में दो तोला गंधक का महीन चूर्ण मिला देना चाहिए। ज्वार में हरदे (Rust) वाली व्याधि भी होती है, परन्तु गेहूँ जैसी हानिकारक नहीं होती।

फसल की तैयारी और उपज

चरी वाली फसल को तो बाल निकलते ही काटने लग जाते हैं और पशुओं को खिलाते हैं। उत्तम पोषण-शक्ति वाली चरी उस समय होगी जब बीज में दूध पूरा भर गया हो, परन्तु वे पूर्ण पकने न पायें। ऐसी फसल ज्वार की जाति अनुसार दो-ढाई महीने से लेकर तीन-चार महीने में कट जाती है। चरी काट कर ज्वार के डण्टल ही से पूलियाँ बाँध देते

हैं और खेतों में इकट्ठी कर के खड़ी कर देते हैं जहाँ से खलिहान में या जहाँ रखना होता है वहाँ रख देते हैं। हरी चरी की उपज लगभग पाँच मन और सूखी की डेढ़ सौ से दो सौ मन तक हो जाती है।

क्षेत्रफल जब थोड़ा होता है, तो चरी मजदूरों से कटवाते हैं और सस्ती भी पड़ती है। एक एकड़ की चरी काटने, पूलियाँ बाँधने तथा इकट्ठी करने में सात-आठ मजदूर लग जाते हैं। यदि चरी का क्षेत्रफल तीस-पैंतीस एकड़ से अधिक हो तो मशीन से कटवाना अच्छा रहता है। चूँकि मशीन की चाल तेज होती है, इसलिए दो जोड़ी बैल रखने होंगे जो पारी-पारी से जोते जा सकें। एक बैलों को हाँकने वाला और एक मशीन के लीवर को सम्भालने वाला ऐसे दो मजदूर लगेंगे। एक मशीन एक दिन में छ-सात एकड़ की चरी काट देगी। उस चरी को बाँधने और और इकट्ठी करने के लिए कम-से-कम तीस मजदूर प्रति एकड़ के हिसाब से लगेंगे।

खानेवाली ज्वार जाति अनुसार चार महीने से लेकर छः महीने में पकती है। साधारणतः यह कहा जा सकता है, कि सबसे पहले बिखरे भुट्टे वाली बाद में ढीले भुट्टे वाली और अन्त में ठोस भुट्टे वाली ज्वार पकती है।

उत्तर भारत में खानेवाली ज्वार की कटाई मार्गशीर्ष-पौष (नवम्बर-दिसम्बर) में होती है। दक्षिण भारत में बौने के समय से चार महीने बाद तैयार हो जाती है।

ज्वार की कटाई पूर्ण पकने पर ही होनी चाहिए। कटाई की कई रीतियाँ हैं। कहीं-कहीं भुट्टे पहले काट लेते हैं और पौधे बाद में काटते रहते हैं। बहुधा ऐसा भी होता है कि भुट्टे सहित पौधे काट लेते हैं और बाद में खलिहान में भुट्टे काटते हैं। इनमें से कौन-सी रीति काम में लाई जाय यह स्थानीय प्रचलित रीति, ज्वार की जाति, उसमें की मिश्रित फसल तथा मजदूरों की प्राप्ति पर निर्भर है। उत्तम रीति तो यही होगी कि भुट्टों के साथ ही पौधे काटे जायं, ताकि यदि कोई भुट्टा पूर्ण न

पका हो तो वह पौधे के साथ रहने से पक जाय, लेकिन कृषक बहुधा अपने स्थान की प्रचलित रीति अनुसार ही काम करते हैं। जब ज्वार बहुत ऊँची होती है, तो वहाँ भुट्टे काटने में समय बहुत लगता है, ऐसे स्थानों में पौधे ही काटना ठीक होगा। यदि ज्वार के साथ कोई मिश्रित फसल होती है, जिसकी लता ज्वार के पौधों पर चढ़ी रहती है और वह पूर्ण न पकी हो तो उस स्थिति में भुट्टे काट कर कड़बी खेतों में कुछ दिनों के लिए छोड़ देना पड़ता है। जहाँ मजदूरों की कमी हो वहाँ भी भुट्टे ही कटवा कर बाद में समय मिलने पर कड़बी कटवाते हैं। परन्तु ऐसा करने से कुछ कड़बी खराब हो जाती है, उसके पत्ते उड़ जाते हैं। जहाँ कटी हुई ज्वार के चोरी जाने का भय हो वहाँ भी भुट्टे ही पहले काट लिये जाते हैं और उसी वक्त गाड़ी में लाद कर खलिहान में पहुँचा दिये जाते हैं।

जहाँ पौधे भुट्टे सहित काटे जाते हैं वहाँ मजदूर काटते जाते हैं और ज्वार के पतले हरे पौधे जो कहीं-कहीं रह जाते हैं उनसे पिण्डियाँ^१ बाँधते जाते हैं। संध्या समय सब पिण्डियाँ खेतों में एक जगह इकट्ठी करके खड़ी कर दी जाती है, और जब सब खेतों की ज्वार कट जाती है तो गाड़ियों में भरकर खलिहान में ले जाते हैं, वहाँ पर भी वे खड़ी कर दी जाती हैं। जब खलिहान की फर्श गेहूँ के वर्णन में दी गई रीति से तैयार हो जाती है तो उसके चारों ओर मजदूर बैठ जाते हैं। एक व्यक्ति उन्हें पिण्डियाँ देता जाता है और वे बाल काटकर तैयार फर्श पर फेंकते हैं। कड़बी की फिर से पिण्डियाँ बाँध दी जाती हैं और उन्हें एक दूसरे के ऊपर तहवार जमा कर रखते जाते हैं। ये इस रीति से रखी जाती हैं कि जिसमें चारों ओर घेरा हो जाय। बहुधा बहुत से कृषक मिल कर एक जगह खलिहान बनाते हैं और सब अपनी-अपनी कड़बी इस रीति से रखते हैं कि एक बड़ा भारी घेरा हो जाता है और सबका माल उस घेरे

^१ गेहूँ के बण्डल को पूला और ज्वार के बण्डल को पिण्डी कहते हैं।

के अन्दर सुरक्षित रह जाता है ।

एक एकड़ की ज्वार काटने, पिण्डियाँ बाँधने और सन्ध्या समय उसको इकट्ठी करने में सात-आठ मजदूर लगते हैं । खलिहान में भुट्टे काटने, पिण्डियाँ पहुँचाने व फिर से हटाने के लिए पाँच मजदूर प्रति एकड़ की फसल के लिए काफी होंगे ।

खलिहान में डाल देने के पश्चात बैलों से गाहनी की जाती है । ज्वार में भुट्टे से दाना छुड़ाने का ही प्रश्न नहीं होता, बल्कि पुटपत्र से भी बीज छुड़ाना होता है इसलिए गाहनी बहुत करनी होती है । ज्वार की गाहनी के लिए सिर्फ एक एकड़ का ही माल नहीं लिया जाता । कम-से-कम तीन-चार एकड़ का माल एक साथ ही लिया जाता है । यदि उपज दस मन प्रति एकड़ ली जाय तो चार एकड़ के भुट्टों से चालीस मन ज्वार निकलेगी । इतनी ज्वार के लिए चार जोड़ी बैल और दो व्यक्ति दो दिन काम करेंगे तब माल तैयार होगा । गाहते समय दतारी से भुट्टों को उलट-पुलट भी करना होता है ।

कहीं-कहीं पत्थर के रोलर से भी गाहनी की जाती है । दो फुट व्यास का चार फुट लम्बा रोलर भुट्टों पर चलाते हैं । ऐसा अनुमान है कि उससे काम कुछ जल्दी होता है और व्यय भी कम पड़ता है ।

ज्वार की उपज—साधारणतः कड़बी की उपज बीज से पाँच-छः गुनी होती है परन्तु इसमें कभी अपवाद भी हो जाता है । यदि किसी कारण से भुट्टों में दाना अच्छा न पड़े तो कड़बी की उपज अधिक भी हो जाती है । कहीं-कहीं जब कड़बी छोटी रह जाती है और दाना अच्छा पड़ जाता है तो कड़बी बीज की तीन गुनी भी हो जाती है ।

अकोला के पाँच साल के प्रयोगानुसार रामकेल, सावनेर, धामणा तथा ई० बी० नं० १० की उपज देखी गई तो वह १७.१, १७.१, १७.१ और १७.५ मन प्रति एकड़ उतरी । अर्थात् अनाज की उपज १७ मन प्रति एकड़ पड़ी । उनकी कड़बी की उपज ८६, १००, १०७ और १०६ मन प्रति एकड़ पड़ी । यह उपज काफी अच्छी है और उस स्थान की है

जहाँ की भूमि और जलवायु ज्वार के अनुकूल है ।

डयी और फूलर महोदय के मतानुसार उत्तर प्रदेश की औसत उपज १० मन बीज तथा ६० मन कड़बी मानी गई है । मॉलीसन महोदय गुजरात की तरफ की उपज १० मन ज्वार तथा दो-ढाई मन दूसरी फसल की मानते हैं ।

वितरण और व्यवसाय

जैसा गेहूँ वाले प्रदेशों में गेहूँ का और चावल वाले प्रदेशों में धान या चावल का उसी भांति ज्वार वाले प्रदेशों में ज्वार का प्रारम्भिक वितरण होता है । उसके बाद दस सेर प्रति एकड़ के हिसाब से गिना जाय तो बयासी लाख मन यानी उपज का ५ शतांश तो बीज के लिए रखना पड़ता है । शेष का वितरण खाने के लिए होता है । ज्वार की खपत जिन प्रान्तों में ज्वार विशेष होती है वहीं अधिक होती है । कृषक जो रखने योग्य हैं वे साल भर के खाने को रख लेते हैं । शेष को अधिकांश कृषक स्थानीय महाजनों के हाथ ही बेच देते हैं । जो मंडी ले जाते हैं उन्हें तो गेहूँ के वर्णन में बताये हुए चुंगी तथा मण्डी के सब खर्च का भार उठाना पड़ता है । गेहूँ और धान में मध्यस्थ व्यापारियों की संख्या जितनी होती है उतनी ज्वार के व्यवसाय में नहीं होती । गेहूँ और चावल का जैसा अन्तर-प्रान्तीय व्यापार होता है वैसा ज्वार का नहीं है, क्योंकि खाने की ज्वार वहीं के लोग खाते हैं जहां वह उपजती है । इसके न विशेष पदार्थ बनते हैं और न वह इतनी स्वादिष्ट होती है कि जहां इसकी उपज न हो वहां वाले इसका उपयोग करें । दूसरी बात यह है कि ज्वार इतनी सस्ती बिकती है कि यदि उसके मूल्य पर चालान का खर्चा बिठाया जाय तो बहुत मँहगी पड़ जाती है ।

उपयोग और गुण

ज्वार के पोषक पदार्थ—

जल	आमिष स्नेह	खनिज	सर्करायुक्त	चूना	फा.
	जातीय			Ca	
११.६%	१०.४%	१.६%	१.८%	७.४%	०.३%
लोहा	०.०६२%	खाद्योज ए.	१३६	युनिट,	खाद्योज बी. ११५
युनिट,	उष्णोत्पादक शक्ति	२०२	केलोरी	प्रति छटाँक ।	

गेहूँ के साथ इन अंकों की तुलना की जाय तो ज्ञात होगा कि ज्वार में पोषण शक्ति गेहूँ से कुछ ही कम है, लेकिन चूँकि गेहूँ की अपेक्षा ज्वार जल्दी पचती है इसे गेहूँ से कुछ हद तक उत्तम भी कह सकते हैं।

ज्वार में भी सफेद की अपेक्षा मोतिया अच्छी होती है। इसमें आमिष जातीय, स्नेह तथा खनिज पदार्थ कुछ विशेष रहते हैं। स्वाद में भी ऐसी ज्वार मीठी होती है।

वैद्यक मतानुसार ज्वार हलकी, शीतल, वीर्य-वर्धक, पित्तनाशक तथा रुधिर के विकारों को दूर करनेवाली होती है।

उपयोग—

ज्वार खाने के काम में लाई जाती है। इसके विशेष पकवान नहीं बनते। दलिया और रोटियाँ ही बनती हैं। वैसे लड्डू वगैरह बनाये जायँ तो वे भी अच्छे ही बनते हैं। हरे भुट्टे आग पर भूनकर उनके दाने खाये जाते हैं। सूखी ज्वार का लावा (फूले) बनाकर भी खाते हैं।

भुट्टों की गाहनी के बाद जब बीज अलग कर लिये जाते हैं तो जो शेष पदार्थ बचता है उसे 'बूरी' कहते हैं। उसे पशु बड़े प्रेम से खाते हैं। कड़बी काटकर पशुओं को खिलाई जाती है। चरी के रूप में हरी ज्वार या सूखी ज्वार की कुट्टी काटकर पशुओं को खिलाते हैं। कड़बी की अपेक्षा चरी में पोषण शक्ति अधिक होती है। चरी का 'साईलेज' भी बनाते हैं जिसमें हरे चारे के गुण रहते हैं।

पशुओं को हरी ज्वार खिलाई जाय तो निम्नलिखित बातों की ओर ध्यान रखना चाहिए क्योंकि छोटे-छोटे पौधों में जहर हो जाता है, जिससे पशु मर जाते हैं ।

(१) ज्वार में जबतक फूल न आ जायें नहीं खिलानी चाहिए । फूल आ जाने पर जहर नष्ट हो जाता है ।

(२) रबी ज्वार के छोटे पौधे विशेष हानिकारक होते हैं ।

(३) शालू जो गर्मी में होती है उसके पौधे दूसरी से भी अधिक हानिकारक होते हैं ।

(४) इन तीनों से उस ज्वार के पौधे और भी खराब होते हैं जिसकी बाढ़ खूब अच्छी हो लेकिन पानी के अभाव से उसका बढ़ना एकाएक रुक जाय ।

ज्वार के पौधे सूख जाते हैं तो फिर उनमें जहर नहीं रहता ।

बाजरा Bajra *Pennisetum typhoidis*

अन्नो की खेती में चौथा स्थान बाजरे का पड़ता है। पहले तीन में चावल, गेहूँ तथा ज्वार की गणना है। पोषणात्मक पदार्थों की मात्रा-नुसार देखा जाय तो बाजरा पहले तीनों से श्रेष्ठ है; परन्तु चूँकि यह गरम बहुत होता है, जल्दी पचता नहीं, स्वाद भी उत्तम नहीं होता, रोटियाँ काली-काली होती हैं और इसके पकवान भी विशेष नहीं बनते, इन कारणों से इसे चाहिए वैसा सम्मान नहीं मिलता।

बाजरे के पौधे ज्वार के पौधे से पतले होते हैं। पत्ते वैसे ही लेकिन कम चौड़े होते हैं। पौधों की ऊँचाई ज्वार से कुछ ही कम होती है। भुट्टे ज्वार जैसे नहीं होते। ये दस-बारह इंच लम्बे एक इंच व्यास के होते हैं। कुछ जातियाँ ऐसी हैं जिनके भुट्टे डेढ़-दो फुट लम्बे और दो इंच व्यास के होते हैं। ऐसी जाति गुजरात की तरफ अधिक होती है। ज्वार में बहुधा दौजी नहीं निकलती, परन्तु बाजरे में निकलती है।

बाजरा साधारणतः दो रंग का होता है। एक कुछ हरे रंग का और दूसरा भूरे रंग का। बीज के आकारानुसार भी दो जातियाँ होती हैं। एक छोटे बीज वाली दूसरे बड़े बीज वाली। जिस बाजरे के भुट्टे दो फुट लम्बे और दो इंच व्यास के होते हैं उस जाति के बीज बड़े होते हैं। ऐसे बाजरे को काठियावाड़ी, भावनगरी, जामनगरी, जबलपुरी इत्यादि नाम से कहते हैं। बड़े बीज वाले बाजरे की अपेक्षा छोटे बीज वाला बाजरा जल्दी पकता है।

व्यापारी वर्ग में गेहूँ, चावल तथा ज्वार के अनेक नाम हैं वैसे बाजरे के नहीं हैं। कहीं-कहीं हरे बीज वाले को बाजरा और भूरे वाले को बाजरी कहते हैं। इनके सिवाय ऊपर जो बतलाये गये हैं, जैसे हरा, भूरा,

काठियावाड़ी, भावनगरी इत्यादि नाम भी बाजरे को दिये हुए हैं। मद्रास की तरफ एक जाति (असि कम्बु^१) ऐसी होती है जिसके बीज बाल से जल्दी छूट जाते हैं और साफ निकलते हैं। उसे पीसने के पहले कूटना नहीं पड़ता। दूसरे बाजरे को अच्छा साफ करने के लिए कूटना पड़ता है।

जलवायु

बाजरा उष्ण कटिबन्ध की फसल है। इसके लिए तरी वाला उष्ण वातावरण ही अच्छा होता है। ज्वार की अपेक्षा कम वर्षा वाले स्थानों में बाजरा हो जाता है। अच्छी उपज के लिए २० इंच से २५ इंच वर्षा होनी चाहिए। पन्द्रह से बीस इंच वाले स्थानों में भी कुछ बाजरा हो जाता है। इससे कम वाले स्थानों में बिना सिंचाई के नहीं होगा। ज्वार की भांति बाजरे में फूल आते समय यदि वर्षा हो जाय तो फूल धुल जाते हैं और उपज बहुत कम हो जाती है। बीज के अंकुरित होते समय भी अधिक वर्षा नहीं होनी चाहिए। बीज के अंकुरित होने के लिए भूमि में आठ-दस शतांश जल अवश्य होना चाहिए। भारी मिट्टी में इससे कुछ अधिक ही चाहिए। बाजरे के लिए थोड़ी-थोड़ी वर्षा होती रहे तो उत्तम होता है। यदि वर्षा के साथ बीच-बीच में धूप भी अच्छी निकलती रहे तो बाजरे में बीज अच्छा पड़ता है और वह पकता भी अच्छा है। उपज भी अच्छी होती है।

भूमि और जुताई

बाजरे के लिए बलुआ दुमट मिट्टी अच्छी होती है। दुमट में भी मोटे दाने वाला और देरी से पकनेवाला बाजरा अच्छा होता है। उससे भारी मिट्टी में अच्छा नहीं होता। जहाँ ज्वार और बाजरे का प्रश्न साथ आता है वहाँ अच्छी भूमि ज्वार को और हल्की मिट्टी बाजरे को मिलती है, परन्तु यदि वर्षा कम हो जाय या खेत सन्तोषजनक तैयार न हो तो अच्छे खेतों में भी बाजरे को स्थान मिल जाता है। जिस रीति से ज्वार

^१ मद्रास की तरफ बाजरे को कम्बु कहते हैं।

के लिए भूमि तैयार करते हैं, उसी भांति बाजरे के लिए भी करनी चाहिए। छोटे बीज वाले के लिए यदि एकाध जुताई ज्वार से कम हो तो भी हानि नहीं होगी, परन्तु भावनगरी जैसे बड़े के लिए तो ज्वार जैसी होनी ही चाहिए।

उत्तर भारत में बाजरा अधिकतर खरीफ की फसल है। दक्षिण भारत में मद्रास की तरफ दो फसलें होती हैं एक खरीफ की और दूसरी गर्मी में। गर्मीवाली को सींचना होता है तो अन्तिम जुताई के बाद नालियाँ और क्यारियाँ बना देनी चाहिए। जहाँ कतारों में बोया जाय वहाँ बोने की सहूलियत के लिए बोने के बाद भी क्यारियाँ बनाई जा सकती हैं। पी० एच० के विचार से देखा जाय तो ज्वार के लिए जैसी पी० एच० वाली मिट्टी चाहिए वैसी ही बाजरे के लिए भी होनी चाहिए। अम्लदार मिट्टी में बाजरा अच्छा नहीं होता।

खाद और हेरफेर

बाजरे में खाद्य पदार्थ—

जल	ना०	फा० पे०	पो० आ०
बीज ११ ३%	१०६८%	००६८%	००४२%

कड़वी—इसके विश्लेषण के अंक प्राप्त नहीं हुए हैं परन्तु चूँकि ज्वार और बाजरे के बीज के अंक करीब-करीब समान हैं ज्वार की कड़वी के अंक के समान ही बाजरे की कड़वी के अंक मानकर गणना कर लेते हैं।

समस्त भारत की औसत उपज ली जाय तो लगभग चार मन प्रति एकड़ पड़ती है और मद्रास की उपज लगभग सात मन पड़ती है। डथी और फूलर महोदय के अनुमानित अंक सात मन बीज और दस मन कड़वी है। कहीं-कहीं दस मन तक की उपज भी हो जाती है। यदि सात मन उपज बीज की और तीस मन उपज कड़वी की मानकर उपर्युक्त विश्लेषणों के अंकों से गणना की जाय तो ४७ सेर ना० बीज में और ५७६ सेर कड़वी में पड़ती है और कुल १०४६ अर्थात् लगभग साढ़े दस सेर ना० प्रति

एकड़ हुई। इतनी मात्रा पहुँचाने के लिए हमें १२५ मन एमोनियम सलफेट या ५०० मन खली या १००००० मन गोबर का खाद जिसके द्वारा ना० की दूनी मात्रा पहुँच सके डालना चाहिए।

उपज के विचार से तथा भूमि की उर्वरा शक्ति बनाये रखने के लिए हमें इतना खाद अवश्य देना होगा, परन्तु व्यावहारिक रूप में इतना नहीं दिया जा सकता क्योंकि ज्वार की भाँति बाजरे की फसल भी इतनी सस्ती विकती है कि आर्थिक दृष्टि से इतना खाद देना सम्भव नहीं। दूसरा कारण यह है कि खाद यदि मिल सके तो वह अधिक मूल्य वाली फसलों को दिया जाता है बाजरे जैसे को नहीं देते। कहीं-कहीं खेतों में भेड़ें बिठा देते हैं। जिनके मल-मूत्र से खाद बन जाता है। अधिकतर फसल के हेर-फेर से ही भूमि की उर्वरा शक्ति बनाये रखते हैं। बाजरे के लिए खाद के प्रयोग मद्रास प्रदेशों में पालूर और कोयलपट्टी में कुछ हुए हैं। उनके अंक देखे गये तो ना० के खाद तो आर्थिक दृष्टि से लाभप्रद सिद्ध नहीं हुए। हड्डी का चूर्ण जहाँ हरे खाद के साथ दिया गया। वहाँ कुछ लाभप्रद जँचता है। बम्बई और पूना में पाँच गाड़ी गोबर के खाद के साथ में पाँच सेर ना० कृत्रिम खाद के साथ में देकर देखा गया तो एक सात तो कुछ लाभप्रद सिद्ध हुआ परन्तु दूसरे साल कुछ लाभ नहीं हुआ।

ऐसी स्थिति देखते हुए यह कहा जा सकता है कि बन सके तो बाजरे के लिए एक सौ मन गोबर का खाद दे देना चाहिए ताकि उससे बाजरे को कुछ लाभ हो जाय और यदि उसे लाभ न हो तो दूसरी फसल को लाभ पहुँच जाय।

हेरफेर—ज्वार की भाँति बाजरे की भी मिश्रित फसलें होती हैं। इसके साथ ज्वार, अरहर (तूर), कुलथी, सेम, मूंग, तिल, अम्बाडी इत्यादि की फसलें ली जाती हैं। ऐसी स्थिति में विशेष हेर-फेर की आवश्यकता नहीं होती परन्तु यदि एक ही फसल ली जाय तो कपास तथा ज्वार के साथ भी हेर-फेर हो सकता है। वैसे रहर के साथ किया जाय

तो उत्तम होगा। पंजाब में गेहूँ के साथ भी हेर-फेर करते हैं।

बीज और बोआई

बोने के लिए भुट्टे के बीच वाले भाग के बीज अच्छे होते हैं और अच्छे कृषक ऐसे बीज को ही दूसरी फसल के लिए रखते हैं। कृषि विभाग के वनस्पति विज्ञान वेत्ताओं द्वारा जितना काम अन्य फसलों पर हुआ है इतना बाजरे पर नहीं हुआ है। मद्रास में कुछ काम हुआ है और वहाँ अन्य फसलों की भाँति बाजरे के भी नम्बर वाले बीज वितरित होते हैं। अन्य प्रदेशों में तो अधिकतर बाजरे की जो जातियाँ बोई जाती हैं उन्हींके अच्छे बीज चुनकर बोते हैं। बाजरे के नाम स्थान के नाम के आधार पर हैं, जैसे बम्बई, पंजाबी, जामनगरी, भावनगरी, अकोला इत्यादि। उत्तर मद्रास में बहुधा पहले तीन नाम पाये जाते हैं। गुन्टूर के आस-पास बाजरा नं० ७०० अच्छी उपज देता है। मद्रास में नं० २२२६, २६७ और ७६१ भी अच्छी जाति के बाजरे हैं।

पंजाब में बाजरा चरी के लिए भी काफी बोया जाता है वरना अधिकतर बीज के लिए ही बोते हैं। बीज की दर बोने की रीति अनुसार न्यूनाधिक होती है। कतारों में बोया जाय तो ढाई सेर से तीन सेर बाजरा काफी होता है। छींट कर बोया जाय तो लगभग पाँच सेर प्रति एकड़ छीटना चाहिए। सिन्ध की तरफ सात-आठ सेर भी छींटते हैं। वहाँ भूमि में सिंचाई से तरी लाकर बोना होता है।

उत्तर भारत में बाजरे की फसल खरीफ की फसल होती है और बहुधा ज्वार के बोने से निमटकर ही बोते हैं क्योंकि यदि ज्वार की आवश्यकता पूर्त पानी होता नहीं दिखे तो बाजरा ही बो देते हैं। जहाँ बाजरा ही बोना निश्चय रहता है वहाँ ज्वार के पहले या बाद में कभी भी बो सकते हैं। जहाँ अगस्त के अन्त तक पानी गिरने की सम्भावना हो वहाँ ज्वार के बोने के बाद ही बोना चाहिए क्योंकि उन दिनों में बाजरे में फूल आयेंगे और यदि पानी हुआ और फूल धुल गये तो उपज बहुत कम हो जायगी।

पंजाब में बाजरा श्रावण (जुलाई-अगस्त) में बोया जाता है । उत्तर प्रदेश में भी यही समय है । मध्य प्रदेश, मध्य भारत, गुजरात तथा राजस्थान में आषाढ़-श्रावण (जून-जुलाई) में बोते हैं । सिन्ध में आषाढ़ में पानी देकर जुताई करके क्यारियाँ बनाई जाती हैं और फिर बीज छींट कर बो देते हैं । बाद में प्रति दस-बारह दिन पर आवश्यकतानुसार पानी देते रहते हैं । दक्षिण भारत और मद्रास में आषाढ़ (जून) में खरीफ की फसल और चैत्र (मार्च-अप्रैल) में गर्मी वाली फसल बोते हैं । श्री देसाई लिखते हैं कि गुजरात में केरा जिले में भी गर्म ऋतु में बाजरा सिंचाई से उपजाया जा सकता है । इसके लिए माघ (फरवरी) में बीज बोया जाता है । फसल तीन साढ़े तीन महीने में ज्येष्ठ (मई) तक तैयार हो जाती है । ऐसी फसल बरसात के पहले तैयार हो जाती है । पंजाब में भी कहीं-कहीं गर्मी वाली फसल ली जाती है ।^१

बाजरा बहुधा छींट कर ही बोते हैं । इसे नाली वाले हल, तिफण या ड्रिल से भी बो सकते हैं । जब कतारों में बोया जाय तो अठारह इंच की दूरी ठीक होती है । इतनी दूरी में निंदाई अच्छी हो सकती है । पौधे से पौधा एक फुट की दूरी पर रखना चाहिए । बाजरे में चूँकि दौंजी काफी निकल आती है जगह अच्छी भर जाती है ।

निंदाई और देखभाल

जहाँ बाजरा चरी के लिए बोया जाता है वह इतना घना हो जाता है कि घास-पात जमने नहीं देता है । ऐसे खेतों में निंदाई की आवश्यकता नहीं होती । बीच वाली फसल में जो कतारों में बोई जायँ उनमें दो-एक बार कड़पा या डौरा चला देना चाहिए ताकि घास-पात निकल जाय, भूमि की पपड़ी टूट जाय और बाजरे की जड़ों को ताजी हवा भी मिल जाय । पहला कड़पा बोने के करीब बीस दिन बाद और दूसरा पहले से बीस-पच्चीस दिन बाद चलाना चाहिए । छींट कर

बोई जाने वाली फसल में यदि बन सके तो एक बार खुरपी से निंदाई करा देनी चाहिए। निंदाई के समय पौधों की छटनी भी होनी चाहिए कि जिसमें पौधों में फुट-सवा फुट का अन्तर हो जाय। कतार वाली फसल में कतारों में पौधों का अन्तर एक फुट कर देना चाहिए।

बाजरे में एक प्रकार की व्याधि ऐसी होती है कि भुट्टों में बीज न आकर पत्ते ही निकल आते हैं। ऐसे पौधे दिखलाई दें तो उन्हें काटकर जला देना चाहिए।

बाजरे के भुट्टे ठोस होते हैं और बीज भी खुले हुए होते हैं इसलिए इनपर पक्षी बहुत आक्रमण करते हैं। कच्चे बीज में हानि विशेष होती है इसलिए दाना पड़ने लगे उस समय से दाना कठोर हो जाय उस समय तक रखवाली करनी पड़ती है। यह समय लगभग बीस-पच्चीस दिन का होता है।

सिंचाई

बलुआ दुमट में आठ-दस शतांश तथा दुमट में दस-बारह शतांश जल होगा तब बाजरे के बीज अंकुरित होंगे। इसलिए जमीन में बोने के समय तरी कम हो तो इतनी तरी सिंचाई द्वारा लाकर बीज बोना चाहिए। बाजरा विशेषतः वर्षा के जल के आधार पर होता है क्योंकि फसल बहुधा वर्षा ऋतु में ही होती है। उत्तर भारत में पंजाब और सिन्ध तथा दक्षिण भारत में गर्मी में भी चरी या बीज के लिए बाजरा बोते हैं। ऐसे बाजरे को सींचना पड़ता है। सिन्ध में तो वर्षा बहुत कम होती है इसलिए वहाँ तो खरीफ की फसल को भी अधिकांश स्थानों में सींचना होता है।

कीट और व्याधियाँ

कीट—टिड्डे, टिट्टियाँ तथा ज्वार में जिन-जिन कीट का वर्णन किया गया है। उन्हींके कुछ कीट बाजरे में भी हानि पहुँचाते हैं। जो उपचार ज्वार के वर्णन में दिये गये हैं। वे ही करने चाहिए।

उन कीट के सिवाय बाजरे में गोबरीले कीट की जाति का एक कीट और भी होता है जिसकी मादा धड़ में छेद करके अण्डे दे देती है। बाल-कीट निकलकर धड़ में ही रहते हैं और कोष बनाते हैं। तरुण रूप प्राप्त करने पर कीट बाहर निकल आता है। व्याधि-ग्रस्त पौधा यदि निंदाई के वक्त दिखलाई दे और वह भी मरता हुआ हो तो उसे उखाड़कर जला देना चाहिए।

फंगस वाली व्याधि में एक व्याधि 'ग्रीन इयर' (Green ear) नाम की होती है, जिसमें भुट्टों में दाना न पड़कर छोटे-छोटे पत्तों के गुच्छे निकल आते हैं। ऐसी व्याधि दिखे तो निंदाई के वक्त व्याधिग्रस्त पौधों को उखाड़कर जला देना चाहिए।

इसके सिवाय हरदे (Runt) वाली तथा कायमें (Smut) वाली व्याधियाँ भी कही-कहीं दिख जाती हैं परन्तु ऐसी नहीं होती कि जिनके लिए विशेष ध्यान दिया जाय।

फसल की तैयारी और उपज

जल्दी पकनेवाले बाजरे की फसल तीन महीने में और देरी से पकनेवाले की चार महीने में तैयार हो जाती है। गर्मी की ऋतु वाली फसल भी तीन महीने में तैयार हो जाती है। खरीफ वाली फसल जाति अनुसार तथा बोने के समयानुसार भाद्रपद से लेकर कार्तिक (जुलाई से अक्तूबर तक कटती रहती है। फाल्गुन-चैत्र (मार्च-अप्रैल) में बोई जानेवाली वर्षा के पहले-पहल तैयार हो जाती है।

चरी की फसल आवश्यकतानुसार काटते रहते हैं, परन्तु बीज वाली को उस वक्त काटते हैं जब बाल पूरे पक जाते हैं। बहुधा ज्यों-ज्यों बाल पकते जाते हैं उन्हें काटते जाते हैं और खलिहान में पहुँचाते रहते हैं। जब फसल अधिक होती है, तो सब भुट्टे एक साथ ही काट लिये जाते हैं। इनमें थोड़े-से भुट्टे अधपके रह जाते हैं जिससे कोई-कोई दाना पतला रह जाता है। कड़वी बाद में काट ली जाती है। एक एकड़ की कड़बी

दो-तीन मजदूर एक दिन में आसानी से काट लेते हैं। सिर्फ बाल की कटाई की जाय तो काटने और इकट्ठे करने में पाँच-छः मजदूरों की आवश्यकता होगी। भुट्टे काटने के बाद उन्हें खलिहान में सुखा लेते हैं और बाद में गाहनी करते हैं। जब माल थोड़ा होता है तो डण्डों से पीटकर दाना छुड़ा लेते हैं और जब बहुत होता है तो भुट्टों को फैलाकर बैल चलाकर ही गाहनी करते हैं। ज्वार की अपेक्षा, बाजरे की गहाई बहुत जल्दी हो जाती है, क्योंकि दाना बहुत जल्दी छूट जाता है। ज्वार की गहाई में जितना समय लगेगा उससे आधे समय में बाजरा तैयार हो जायगा।

गहाई के बाद ज्वार की भाँति हवा में उड़ाकर हो दाना-भूसा पृथक् किया जाता है।

बाजरे की उपज चार-पाँच मन प्रति एकड़ से लेकर आठ-दस मन प्रति एकड़ हो जाती है। सूखी चरी की उपज अस्सी से एक सौ मन तक हो जाती है।

वितरण और व्यवसाय

ज्वार की भाँति बाजरे की खपत उन्हीं प्रदेशों में अधिक होती है जहाँ इसकी उपज अधिक होती है। अन्तर प्रदेशीय व्यवसाय थोड़ा है और जो कुछ होता है स्थानीय व्यापारियों द्वारा ही होता है। चूँकि इसकी तासीर गर्म होती है बहुधा इसका उपयोग सर्दी के दिनों में ही किया जाता है। इसलिए जिन प्रदेशों में यह होता है वहाँ भी अन्य धान की भाँति बारह महीने के लिए इकट्ठा करके नहीं रखते।

बीज के लिए कृषक अपना-अपना बीज रख लेते हैं। यदि दस सेर प्रति एकड़ के हिसाब से गणना की जाय तो लगभग चालीस लाख मन बाजरा बीज के लिए रखना पड़ता है जो कल उपज का ४२ शतांश पड़ता है।

उपयोग और गुण

बाजरे के पोषक पदार्थ—

जल	आमिष जातीय	स्नेह	खनिज	सर्करायुक्त
१२.४%	११.६%	४.०%	२.७%	६७.१%
खटिक Ca	स्फुर P	लोहा Fe	खाद्योज ए.	खाद्योज बी.
०.६५%	३.५%	०.०८८%	२२० युनिट,	११० युनिट,

उष्णोत्पादक शक्ति २०४ केलोरीज प्रति छटाँक ।

गेहूँ के साथ इन अंकों की तुलना की जाय तो ज्ञात होगा कि दोनों में आमिष जातीय पदार्थ की मात्रा तो बराबर है । परन्तु स्नेह जातीय पदार्थ की मात्रा गेहूँ की मात्रा से साढ़े तीन गुनी अधिक है । खनिज द्रव्य की मात्रा दुगुनी है । सर्करा जातीय पदार्थ कुछ कम, चूना और स्फुर बराबर, और लोहा कुछ अधिक है । खाद्योज में गेहूँ की अपेक्षा 'ए' की मात्रा अधिक और 'बी' की कम है । कोलोरीज की मात्रा कुछ अधिक है ।

बाजरे को पहले ओखली में कूटना पड़ता है क्योंकि कुछ पुटपत्र बीज के साथ लगे रहते हैं । बाद में फटककर कूड़ा-कर्कट अलग करके काम में लाते हैं । एक जाति ऐसी होती है जिसे कूटने की आवश्यकता नहीं होती । गहाई के वक्त ही पुटपत्र अलग हो जाते हैं । बाजरे के विशेष पदार्थ नहीं बनते । दलिया या रोटियाँ बनाई जाती हैं । वैद्यक मतानुसार बाजरा हृदय को हितकारी, बलदायक, रूखा और गर्म होता है ।

गहाई के बाद बीज अलग कर लेने पर जो महीन भूसा निकलता है उसे पशुओं को खिला देते हैं । डण्ठल जलाने के काम में लाये जाते हैं । कड़बी पशुओं को खिलाई जाती है । यह न तो ज्वार की कड़बी जैसी पौष्टिक होती है और न स्वादिष्ट । चरी पशुओं को खिलाई जाती है जो कड़बी से अच्छी होती है ।

मक्का Maize *Zea mays*

भारत में धान्य (Cereals) की फसलों में छठा स्थान मक्का का है। पहले पाँच में चावल, गेहूँ, ज्वार, बाजरा और जव हैं। ये छः और जई लेकर ऐसे सात धान्य मोटे धान्य कहलाते हैं। इनके बाद रागी (मरुवा), कंगनी, सावां, कोदो, चीना इत्यादि हैं जिन्हें छोटे धान्य कहते हैं। मोटे धान्य में मक्का की ही एक ऐसी फसल है जो बहुत कम समय में पक जाती है परन्तु है बड़ी कोमल। यदि वर्षा इसकी माँग के अनुसार होती रहे तो जितना परिश्रम मक्का पर किया जाय उतना लाभ होता है। आवश्यकतानुसार वर्षा के साथ-साथ निंदाई और खाद पूरा-पूरा मिल जाय तो मक्का की उपज धान की फसल को छोड़कर सबको दवा देती है और वह भी बहुत थोड़े समय की बाढ़ में। अमेरिका में तो मक्का ऐसी भी होती है जो खेतों में पाँच-छः महीना खड़ी रहती है; परन्तु भारत में तो अधिक-से-अधिक साढ़े तीन महीने में फसल खेतों से हटा ली जाती है। विदेशी जातियों का प्रचार भारत में करने के प्रयत्न सफल न रहे क्योंकि मक्का तो जलवायु के अनुसार तुरन्त अपना रंग बदल देती है।

मक्का का पौधा एक अजीब पौधा है। सब धान्य वाली फसलों में बाल या भुट्टे सिर पर आते हैं परन्तु मक्का में नर फूल तो सिर पर लेकिन भुट्टे बीच धड़ पर ही लगते हैं। ये भुट्टे कमजोर खेत में बहुधा एक, अच्छी भूमि में प्रत्येक पौधे पर दो, और कभी-कभी तीन भी आ जाते हैं, लेकिन तीसरे में अधिक बीज नहीं होते। जहाँ दो होते हैं उनमें भी एक बीज से बहुत अच्छा भरा हुआ होता है और दूसरा कुछ कम।

मक्का का पौधा पाँच-सात फुट से लेकर आठ-दस फुट ऊँचा होता है। धड़ की मोटाई पौन इंच से इंच सवा इञ्च हो जाती है। पत्ते सीधी

धारी वाले ज्वार के पत्ते जैसे ही होते हैं। नर फूल, कलंगी जैसा, पौधे के सिर पर होता है। पौधे के बीच धड़ पर भुट्टा जो बनता है, वह पत्तेदार छिलकों से ढका रहता है। उसमें से सफेद बाल जैसा गुच्छा निकलता है यही मादा फूल होते हैं। नर फूलों के पकने पर रेतपात्र (Anthers) फट जाते हैं और पराग कण वैसे ही या हवा से पौधों के हिलने-डुलने से मादा फूल पर आ गिरते हैं—गर्भाधान हो जाता है और भुट्टों पर बीज बन जाते हैं।

मक्का के पौधे में भी ज्वार के पौधों की भाँति सहायक जड़ें निकलती हैं जिनसे मिट्टी के साथ पौधों की पकड़ अच्छी हो जाती है, और हवा से पौधे गिरने नहीं पाते। लेकिन यदि आँधी पानी एक साथ आये तो भूमि के गीली हो जाने से इन जड़ों का वश नहीं चलता, पौधे गिर जाते हैं और गिरे हुए पौधों को दीमक हानि पहुँचा देती हैं।

व्यवसायिक जातियाँ

भारत में होने वाली मक्का के हम मुख्यतः दो विभाग कर सकते हैं। एक सफेद, दूसरी पीली। वैसे कहीं-कहीं बैंगनी या लाल रंग के बीज भी पाये जाते हैं। सफेद और पीली के भी दो विभाग और कर सकते हैं जैसे छोटे दाने वाली और बड़े दाने वाली। व्यवसाय के लिए रंग-रूप और आकार पर ही मूल्य का निर्णय होता है। मक्का की खेती उत्तर प्रदेश में अधिक होती है और वहाँ जौनपुर और आजमगढ़ की मक्का बहुत विख्यात हैं। इनके भुट्टे बहुत लम्बे होते हैं और बीज भी बड़े होते हैं। ऐसी मक्का को स्थानीय नाम से कह सकते हैं। जैसे जौनपुरी मक्का।

अमेरिका में मक्का की खेती बहुत होती है। वैसे तो इसके बहुत-से नाम हैं, परन्तु मुख्यतः छः वर्ग में हम इन्हें बाँट सकते हैं—

१. 'डेन्ट कार्न' इस वर्ग के बीज दाँत के आकार के होते हैं। बीज ऊपर से कुछ दबे हुए रहते हैं।

२. 'पिलन्ट कान' इस वर्ग के बीज गोल और कठोर होते हैं ।
३. 'स्वीट कान' मीठी मक्का इस वर्ग की है । इसके बीज पतले और सिकुड़े हुए होते हैं । ऐसी मक्का को हमारे यहाँ विलायती मक्का कहते हैं ।
४. 'साफ्ट कान या फ्लोर कान' इस मक्का का आटा अच्छा बनता है । यह मुलायम होती है और आसानी से पिस जाती है ।
५. 'पाप कान' इसके दाने गोल और छोटे होते हैं । इसके फूले (भूजा) अच्छे बनते हैं लेकिन उपज कम होती है ।
६. "पांड कान" इस मक्का में भुट्टे पर का प्रत्येक दाना पत्तों में छिपा रहता है ।

जलवायु

मक्का की फसल वैसे तो काफी कठोर होती है परन्तु वर्षा के विचार से बड़ी कोमल होती है । इसलिए पच्चीस इंच से साठ इंच तक के वर्षा वाले स्थान अच्छे होते हैं । साठ इंच की वर्षा पहाड़ी या बलुआ दुमट में ठीक होगी । दुमट और काली भारी मिट्टी वाले स्थानों में तीस-पैंतीस इंच वर्षा ठीक होगी । बाड़ों में बिना जुताई के लगा देने से, खेतों में अन्य फसलों जैसी महीन जुताई नहीं होने से, कम सड़ा हुआ खाद होने पर अथवा भूमि न्यूनाधिक पी० एच० वाली होने पर भी मक्का हो जाती है परन्तु पानी यदि उसकी मांग के अनुसार नहीं हुआ तो बिगड़ जाती है । उपज बहुत गिर जाती है । प्रारम्भ में मक्का को जल अधिक चाहिए, परन्तु साथ-ही-साथ लंगतार वर्षा भी नहीं होनी चाहिए, क्योंकि इससे खेतों में घास-पात बहुत जम जाते हैं और ज़मीन के गीले रहने से निंदाई का कार्य नहीं हो सकता । मक्का के पौधों की बाढ़ प्रारम्भ में कुछ धीरे-धीरे होती है और यदि उस समय घास-पात की बाढ़ विशेष हो जाय तो मक्का के पौधे दब जाते हैं । यदि वर्षा के साथ-साथ कुछ खुले हुए धूप वाले दिन भी मिलते जायँ और घासपात

निकाला जा सके तो पौधों की बाढ़ और उनका स्वास्थ्य बड़ा अच्छा होता है। वातावरण भी मक्का के लिए ऊष्ण और तर चाहिए। तापमान के विचार से देखा जाय तो सब फसलों से ऊँचा तापमान मक्का को चाहिए। एक जर्मन वैज्ञानिक के प्रयोग से यह सिद्ध हुआ कि जहाँ गेहूँ के अंकुरित होने के लिए न्यून-से-न्यून 41° फे. अधिक-से-अधिक 65° फे. तथा सर्वोत्तम तापमान 71° फे. चाहिए वहाँ मक्का के लिए उपर्युक्त तापमान में अंक 45° के 115° फे. तथा 63° फे. चाहिए। इन अंकों का अर्थ यह है कि 45° फे. से कम तापमान में मक्का नहीं जमेगी। उसी भांति 115° फे. से ऊपर की गर्मी होगी तो मक्का अंकुर नहीं फेंकेगी। अच्छा अंकुर फेंकने के लिए 63° फे. का तापमान अच्छा होता है। इसके विपरीत गेहूँ के लिए उत्तम तापमान 71° फे. होता है। इससे यह साफ ज्ञात होता है कि मक्का के लिए ऊष्ण और तर वातावरण होना चाहिए।

भूमि और जुताई

मक्का के लिए सर्वोत्तम भूमि दुमट होती है। उससे उतरती मटियार दुमट और बलुआ दुमट होगी। पी० एच० के विचार से देखा जाय तो अन्य फसलों की अपेक्षा मक्का पर न्यूनाधिक पी० एच० का असर कम होता है। 4.6 पी० एच० वाली मिट्टी में जहाँ जव की फसल बिलकुल नहीं हुई, गेहूँ की लगभग तीन मन प्रति एकड़ हुई वहाँ मक्का की 6 मन के लगभग हुई। 5 पी० एच० वाली भूमि में ये अंक $0.5, 4.5$ तथा 10 मन उतरे। उधर 7.7 पी० एच० वाली में जव की उपज 7.3 मन, गेहूँ की 14 मन तो मक्का की 15.4 मन प्रति एकड़ पड़ी। 6.5 पी० एच० वाली भूमि में भी मक्का की उपज इतनी ही पड़ी। इन अंकों से ज्ञात होता है कि मक्का के लिए 7 पी० एच० वाली मिट्टी उत्तम होती है परन्तु कम ज्यादा पी० एच० वाली में भी मक्का काफी उपज दे देती है, जहाँ दूसरी फसलों की उपज कम हो जाती है।

ज्वार के लिए जैसी जुताई की जाती है वैसी ही इसके लिए भी

होनी चाहिए; परन्तु चूँकि मक्का का बोना वर्षारम्भ के साथ ही होता है इस फसल के लिए खाद देकर खेत ग्रीष्म ऋतु में ही तैयार करने होंगे, पिछली फसल उठाने के बाद और खाद मिलाने के लिए दो बार हल अवश्य चलाना होगा। बोने के पहले एक-दो बार बखर चला कर बो देना चाहिए। इसके लिए बहुत महीन जुताई की आवश्यकता नहीं होती। मक्का के पौधों को भूमि के बाहर निकलने के कुछ दिन बाद से ही निंदाई की मांग बहुत होती है। जहाँ मक्का की फसल हरे भुट्टों के लिए बोई जाती है वहाँ सिंचाई से मक्का ज्येष्ठ (मई) में ही बो दी जाती है ताकि भुट्टे जल्दी तैयार हो जायँ। ऐसी फसल के लिए तो वैशाख-ज्येष्ठ में ही खेत तैयार कर लेने होंगे। कहीं-कहीं चरी के लिए अथवा हरे भुट्टे के लिए ग्रीष्म ऋतु में भी मक्का ली जाती है। ऐसी फसल के लिए माघ (जलवरी-फरवरी) में ही खेती तैयार करके फसल बोनी होगी; परन्तु ग्रीष्म ऋतु में मक्का की फसल बहुत कम ली जाती है।

खाद और फसल का हेरफेर—

मक्का में खाद्य पदार्थ—

	जल	ना०	फा० पे०	पो० आ०	खाटिक
अनाज	१४.४	१.६०	०.५७	०.३७	०.०३
कड़बी	१५.०	०.४८	०.३८	१.६४	०.४६

ये अंक भी जॉनसन महोदय की पुस्तक से लिये गये हैं। इन अंकों की तुलना भारतीय मक्का के अंकों से की जाय तो बीज में ना० कुछ अधिक है, लेखक के ६ साल के प्रयोगों के आधार पर देखा जाय तो औसत मात्रा १.३२ शतांश आयी थी। कम-से-कम १.२२ शतांश और अधिक से अधिक १.४४ शतांश आई थी। ये प्रयोग पूसा में किये गये थे और मक्का पीली थी। सेन महोदय ने जो पृथक्करण के अंक दिये हैं उनमें महु की मक्का जो सम्भवतः पीली ही होगी (क्योंकि उन दिनों में और अब भी मालवे में बहुधा पीली मक्का ही होती है) ना० की मात्रा

१२४ शतांश पाई थी। पंजाब की पीली मक्का में १२७ शतांश और सफेद में १४२ शतांश। कानपुर की पीली मक्का में १५७ शतांश और सफेद में १५३ शतांश मिली थी। इनका औसत देखा जाय तो १४१ शतांश पड़ता है।

लेखक ने कड़वी और डूंडिया (बीज रहित भुट्टा) का ना० भी देखी थी। ये मात्राएँ ०.५ शतांश तथा ०.४२ शतांश आई थीं। इसलिए खाद की गणना के लिए हम १.४ शतांश ना० बीज में, ०.५ शतांश कड़वी में और ०.४ शतांश डूंडिये में मानकर गणना कर लेते हैं।

यदि मक्का की उपज १२ मन बीज, ५० मन कड़वी और डूंडिये की उपज ४ मन प्रति एकड़ मानकर गणना की जाय तो ना० की मात्रा निम्नलिखित होगी।

बीज में	६.७२ सेर
कड़वी में	१०.०० सेर
डूंडिये में	०.६४ सेर
	१७.३६ सेर

इस हिसाब से देखा जाय तो कम-से-कम १७ सेर ना० पहुँचे, इतना खाद देने के लिए एमोनियम सलफेट २ मन या खली की खाद ८ मन और दुगुनी मात्रा के लिए गोबर का खाद १६० मन देना होगा। सिंचाई वाले खेतों से यदि ड्योढ़ी उपज ली जाय तो एमोनियम सलफेट ३ मन, खली १२ मन और गोबर का खाद २४० मन चाहिए। यह गणना फसल के विश्लेषणानुसार हुई; परन्तु व्यवहारिक रूप में इतना खाद दे सकते हैं या नहीं इसका विचार करना है। बाजरे की भाँति मक्का की फसल भी सस्ती बिकती है और आर्थिक दृष्टि से विचार किया जाय तो शायद इतना खाद न दिया जा सके; परन्तु बहुधा ऐसा देखा गया है कि मक्का को जितना गोबर का खाद दिया जाय उतना अच्छा होता है। दूसरी फसल को खाद नहीं देना होता। मक्का के बाद दूसरी फसल इतनी जल्दी बोई जाती है कि खेतों की तैयारी का भी पूरा-पूरा समय

नहीं मिलता फिर उन दिनों में खाद पहुँचाना, फैलाना इत्यादि कार्य में समय नहीं लगा सकते । इसके सिवाय एक लाभ यह भी होता है कि बरसात में गोबर का खाद जो भूमि में रहता है वह सड़-सड़ाकर दूसरी फसल के लिए बहुत अच्छा हो जाता है । इसलिए गोबर का खाद मक्का को अवश्य देना चाहिए । पीछे बतलाई हुई विवेचनानुसार गोबर के खाद के रूप में ना० की मात्रा दुगुनी डाली जाती है इसलिए दूसरी फसल को अच्छा लाभ पहुँचता है ।

जहाँ कृत्रिम खाद अथवा खली का खाद देना हो वहाँ उपर्युक्त मात्रा दी जाय तो आर्थिक दृष्टि से लाभप्रद सिद्ध होगा ।

कुछ प्रयोगों के फलः—अरभावी (बम्बई) में ३० सेर ना० पहुँचे इतना गोबर का खाद देकर देखा गया तो लगभग पाँच मन मक्का विशेष हुई । उसी भाँति दूसरे प्रयोग में ड्योढ़ा खाद दिया तो लगभग ११ मन उपज विशेष हुई । मक्का के लिए पुडरेट (सड़ा हुआ मलमूत्र) का खाद बड़ा अच्छा होता है । वहीं अरभावी में करीब २२ सेर ना० इस खाद के रूप में दी गई तो उपज बिना खाद की उपज से दुगुनी हुई । दोहद (गुजरात) में बीस गाड़ी गोबर के खाद से उपज लगभग १२ मन बढ़ी । बाँका (बिहार) में ४० सेर ना० एमोनियम सलफेट के रूप में डालकर देखा गया तो लगभग ६ मन उपज अधिक हुई थी । सपाया (बिहार) में १० सेर ना० एमोनियम सलफेट के रूप में देने से चार मन उपज अधिक हुई । कानपुर (उत्तर प्रदेश) में मक्का के ऊपर खाद के प्रयोग १८८३ से १९१३ तक देखे गये तो २५ सेर ना० पुडरेट के रूप में विशेष लाभप्रद जँची । उसी भाँति ४० सेर ना० गोबर के खाद के रूप में भी काफी अच्छी सिद्ध हुई ।

उपर्युक्त कुछ प्रयोगों के अंक यहाँ पर इसलिए दिये गये हैं कि जिसमें पाठकों को ज्ञात हो जाय कि मक्का में जितना खाद दिया जायगा उतना ही लाभ होगा । मक्का में खाद का असर तुरन्त मालूम पड़ता है ।

ज्वार अथवा बाजरे में खाद का ऐसा असर जल्दी नजर नहीं आता ।

हेर-फेर:—मक्का के साथ पहले और अब भी जहाँ अफीम की खेती होती है । अफीम का हेर-फेर किया जाता है । जहाँ यह नहीं होता वहाँ रबी की फसल बोई जाती है । अच्छे उपजाऊ खेतों में अथवा मक्का को अच्छा खाद दिया हुआ हो तो मक्का के बाद गेहूँ लेते हैं । यदि खेत कमजोर हुए अथवा मक्का की फसल देरी से हुई और भूमि की जुताई ठीक न हुई तो जव या चना लगा देते हैं । कभी-कभी सरसों, अलसी आदि भी बो देते हैं ।

मिश्रण—ज्वार की भाँति मक्का के साथ भी अन्य फसलें लगाई जाती हैं, परन्तु चूँकि मक्का की आयु बहुत थोड़ी होती है इसके साथ ऐसी ही फसलें लग सकती हैं जो इसीके साथ तैयार हो जायँ । ऐसी फसल में बहुधा उड़द ही है जो मक्का के साथ-साथ तैयार हो जाता है । कांगनी, मरुआ वगैरह भी इसीके साथ-साथ पक जाते हैं सो उन्हें भी बो देते हैं । मोटे चावल वाला धान भी कहीं-कहीं मक्का के साथ बो दिया जाता है । ककड़ी, काशीफल, भिन्डी, तोरी इत्यादि तरकारियाँ भी इसके साथ लगा देते हैं जिनसे काफी आमदनी हो जाती है । कभी-कभी अरहर भी बो देते हैं उस स्थिति में रबी की फसल नहीं ली जा सकती क्योंकि अरहर बहुत दिनों में तैयार होती है । चरी की फसल के साथ चवली की फसल भी बोई जाती है ।

बीज और बोआई

मक्का की भी गेहूँ और धान की भाँति नम्बर वाली जातियाँ बहुत नहीं हैं; क्योंकि इस फसल पर बहुत कम काम हुआ है । दूसरा मक्का में गर्भाधान संकर-क्रिया द्वारा अधिक हो जाता है सो नई जाति निकालना भी बहुत सरल नहीं है । तीसरी कठिनाई यह है कि जलवायु के हेर-फेर से इसके गुणों में बहुत जल्दी परिवर्तन हो जाता है । इन बातों से मक्का के बीज वही अच्छे होंगे जो प्रकृति द्वारा चुने,

जा चुके हैं और जिन्हें स्थानीय जलवायु ने अपना लिया है। वैसे कोई अच्छी जाति कहीं मिले तो उसके बीज मँगवाकर जाँच अवश्य कर लेनी चाहिए।

उत्तर प्रदेश में ना० १३, १६, ४१ अच्छी पाई गयी बिहार के लिए जौनपुर, तीन पखियाँ कोलिमपांग अच्छी है।

मक्का के भुट्टों पर जो बीज बीच में होते हैं वे बड़े-बड़े और समान होते हैं, इसलिए यदि बीच के बीज निकाले जायँ तो अच्छा होगा, परन्तु जहाँ फसल बहुत अधिक बोना हो वहाँ यह सम्भव नहीं है इसलिए बीज के भुट्टे खेत में या खलिहान में ऐसे चुनवाना चाहिए जो अच्छे भरे हुए हों और जिनका दाना एक रंग का और बराबर पका हुआ हो। मक्का के बीज भुट्टों के साथ ही रखना अच्छा होता है। इस प्रकार रखने से उनमें कीट नहीं लग पाते। बहुधा भुट्टों को छिलकों में ही रखकर उन्हें गूँथकर के टांग देते हैं और बोने के समय बीज निकालकर बोते हैं। ऐसे टांगे हुए भुट्टों के बीज में अंकुर फँकने की शक्ति अधिक रहती है और उपज भी अधिक होती है। वेलेस^१ महोदय के प्रयोग से भी यही सिद्ध होता है।

यदि छींटकर बोना हो तो लगभग छः सेर बीज प्रति एकड़ छींटना होगा। जब कतारों में बोना होता है तो चार-पाँच सेर बीज काफी होते हैं। चरी के लिए बीज घने बोये जाते हैं इसलिए चौदह-पन्द्रह सेर डालना चाहिए। इसके बीज की मात्रा प्रति एकड़ करीब-करीब सब प्रदेशों में बराबर ही है।

मक्का की फसल वर्षारम्भ के साथ ही बोई जाती है। यह समय आषाढ़ का प्रारम्भ (जून) होता है। यदि वर्षा देरी से आये तो अन्तिम आषाढ़ में बोते हैं। इसके जल्दी बोने के दो कारण हैं, एक तो यह कि जल्दी बोने से फसल जल्दी आ जाती है सो दूसरी फसल के लिए भूमि अच्छी

1 Wallace H. A. and Bressman E. N. 1937. Corn and Corn growing, p. 6.

तैयार की जा सकती है। दूसरी बात यह है कि प्रारम्भ में वर्षा थोड़ी-थोड़ी होती है सो उन दिनों में खेतों में घास-पात की निंदाई ठीक से हो जाती है। देरी से बोने से वर्षा की झड़ियाँ लग जायँ तो खेतों की निंदाई ठीक नहीं हो पाती। जहाँ हरे भुट्टे बेचकर लाभ उठाना हो वहाँ सिंचाई कर के ज्येष्ठ (मई) में ही बो देना चाहिए ताकि बाजार में हरे भुट्टे श्रावण महीने में ही पहुँचाये जा सकें जब काफी मूल्य प्राप्त हो सकता है। ग्रीष्म ऋतु की फसल माघ (जनवरी-फरवरी) में बो देना चाहिए। चरी की फसल कभी भी बो सकते हैं।

मक्का के बीज छींटकर भी बोये जाते हैं। छींटने के बाद हल चलाकर मिट्टी में मिला देते हैं। जहाँ कतारों में बोते हैं वहाँ नली वाले हल, या ड्रिल से बो सकते हैं। कभी-कभी हल चलाकर चाँस में बीज गिरा देते हैं और बाद में हलका हेंगा (पठार) चला देते हैं या नहीं तो पेड़ की मोटी टहनी काटकर उसे भी जुए में फाँदकर फिरा देते हैं जिससे बीज ढक जाते हैं। छँटनी के वक्त निकले हुए पौधों को डेढ़-डेढ़ फुट के अन्तर पर कर देना चाहिए।

जब कतारों में बोया जाय तो कतारों में डेढ़ फुट से पौने दो फुट का अन्तर मक्का की जाति अनुसार रखना चाहिए। छँटनी करते समय कतारों के पौधों को इस रीति से छँटना चाहिए कि उनमें सवा फुट से डेढ़ फुट का अन्तर हो जाय। चरी वाली फसल के पौधे पाँच-छः इंच की दूरी पर रहें तो ठीक होंगे। चरी वाली फसल यदि हल से बोई जाय तो कतारों की दूरी नौ इंच की रखनी चाहिए। चरी वाली फसल के साथ बहुधा चंवली भी बो देते हैं।

निंदाई और देखभाल

मक्का निंदाई बहुत मांगती है। घास-पात यदि प्रारम्भ में ठीक से न निकाले जायँ तो उपज में बहुत फरक पड़ जाता है। मक्का के पौधे प्रारम्भ में जब कमजोर होते हैं और बाढ़ धीरे-धीरे होती है उस समय उन्हें घास-

पात की प्रतियोगिता से बचाना होता है। घास-पात निकालने के साथ-साथ पौधों की छँटनी भी करनी चाहिए और वह ऐसी होनी चाहिए जिसमें ऊपर बतलाई हुई दूरी हो जाय। बरसात में कई जातों के कीट भी हानि पहुँचाते हैं सो देखते रहना चाहिए कि कहीं उनके अण्डे या बालकीट बहुत संख्या में तो नहीं हैं और हों तो नष्ट कर देना चाहिए। जब पौधों की बाढ़ बहुत होजाय और उनके गिरने का भय हो तो पौधों पर मिट्टी चढ़ा देनी चाहिए। कतारों के बीच हल या हो (Hoe) चला देने से आस-पास की मिट्टी चढ़ जाती है। कभी-कभी लगातार अधिक वर्षा से खेतों में पानी भर जाता है सो उसे निकाल देने के उपाय करने चाहिए।

मक्का की चोरी भी बहुत होती है सो भुट्टों के पकते समय रखवाला अवश्य रखना होगा। सुग्गे, गिलहरी, गीदड़, साही मक्का को बहुत हानि पहुँचाते हैं सो उनसे भी बचाने का प्रयत्न करना होगा। कुछ दिनों तक दिन-रात रखवाली करनी होती है।

सिंचाई

मक्का की फसल बरसात में ही ली जाती है, इसलिए सिंचाई नहीं करनी पड़ती, परन्तु जहाँ वर्षा कम होती है वहाँ सिंचना होगा। कभी-कभी बोने के पहले भी सिंचना होता है। ज्येष्ठ में बोई जाने वाली फसल को भी सिंचना होता है। उसी भाँति ग्रीष्म-ऋतु वाली तथा चरी की फसल भी सिंचाई माँगती है सो आवश्यकतानुसार पानी देना चाहिए। जहाँ छोटकर या हाथ से ही बोना हो वहाँ क्यारियाँ बोने के पहले भी बना सकते हैं।

ट्रान्सपायरेशन रेशियो के हिसाब से देखा जाय तो अभी तक जिन फसलों का वर्णन किया गया है उन सबमें कम मक्का का है। लगभग पचास मन बीज और कड़बी की उपज के लिए ट्रान्सपायरेशन रेशियो ३६० पाया गया है जब कि गेहूँ की उतनी ही उपज के लिए ६२५ और ज्वार के लिए ४०० है।

कीट और व्याधियां

मक्का को हानि पहुँचाने वाले कीट में एक पतंग का बालकीट है वही पौधों में छेद करके उनमें रहकर हानि पहुँचाता है। यदि ऐसे पौधे दिखें तो उन्हें उखाड़ देना चाहिए। टिट्टू (Grasshoppers) (टिट्टियाँ (Locusts) वगैरह भी हानि पहुँचाते हैं। इनके सिवाय ज्वार में जिनका वर्णन किया गया है वे कीट भी हानिकारक हैं, परन्तु मक्का में हानि ऐसी नहीं होती जिसके लिए खास उपचार किये जायँ। जहाँ टिट्टियों का भय हो वहाँ जो साधारण उपचार टिट्टी मारने तथा उनसे बचाने के हैं उन्हें करना चाहिए।

गोदाम में घुन हानि पहुँचाते हैं सो गेहूँ की भाँति सम्हालकर रखना चाहिए। बीज के लिए भुट्टे ही रक्खे जायँ तो वे अच्छे रहते हैं। उनमें घुन जल्दी नहीं लगते; परन्तु इस तरह से रखने में स्थान बहुत लगता है।

फंगस वाली व्याधियाँ तीन-चार हैं। एक वह है जिसमें ऊपर के पत्ते सफेद हो जाते हैं (Downy mildew) और पौधा कुम्हलाकर मुरझा जाता है। दूसरी हरदे वाली और तीसरी कायमे वाली होती है। ये सब ऐसी नहीं होतीं कि जिनके लिए विशेष ध्यान दिया जाय। कायमे वाली नजर आवे तो पौधो को नष्ट कर देना चाहिए।

फसल की तैयारी और उपज

वर्षा के प्रारम्भ में बोई जाने वाली फसल जो आषाढ़ में बोई जाती है उससे भाद्रपद में हरे भुट्टे मिलने लग जाते हैं और भाद्रपद के अन्त तक (मध्य सितम्बर) फसल तैयार हो जाती है। इसकी फसल तैयार उस समय समझना चाहिए जब भुट्टों पर का छिलका सिकुड़ जाय और सूख जाय। यदि किसी कारण से कुछ विलम्ब भी हो जाय तो सितम्बर के अन्त तक फसल कट जानी ही चाहिए। ज्येष्ठ (मई) में बोई जाने वाली तो श्रावण में हरे भुट्टे दे देती है और भाद्रपद में काटी जाती है। माघ में बोई जानेवाली वर्षा के पहले-पहल कट जाती है। इसकी तैयारी

में ढाई महीने से तीन महीने लगते हैं। अधिक-से-अधिक साढ़े तीन महीने में तो खेत साफ ही कर दिये जाते हैं।

मक्का की फसल की कटाई दो तरह से होती है। एक तो ऐसी कि पेड़ों पर से भुट्टे तुड़वा लिये जाते हैं और कड़बी बाद में काट ली जाती है और दूसरी रीति ऐसी है कि भुट्टे सहित पौधे काटकर खेतों के किनारे खड़े कर दिये जाते हैं और बाद में भुट्टे तोड़ लिये जाते हैं। दूसरी रीति में लाभ यह है कि यदि कुछ भुट्टे थोड़े कच्चे हों तो पौधों के साथ रहने से पक जाते हैं।

बीज के लिए भुट्टे अगर खेतों में तोड़े जा सकें तो अच्छा ही है क्योंकि वहाँ यह देखा जा सकता है कि जिस पौधे का भुट्टा तोड़ा गया उसका स्वास्थ्य कैसा है। उन पौधों को न्यूनाधिक स्थान की सुविधा असुविधा तो नहीं है। जब एक पौध को विशेष जगह मिल जाती है तो उसका भुट्टा बड़ा होता ही है। ऐसे पौधे के भुट्टे भी नहीं चुनना चाहिए। अगर खेतों में न चुने जा सकें, तो खलिहान में ही चुन लेना चाहिए। बीज के भुट्टे यदि छिलकों सहित गूँथकर लटकाकर रखे जायें तो ठीक होगा। उनका जल आवश्यकतानुसार सूख जायगा और कीट भी ऐसे बीज को हानि नहीं पहुँचायेंगे। इस तरह से जो बीज रखे जाते हैं उनके बीज अंकुरित अच्छे होते हैं और उपज भी विशेष होती है।

जब भुट्टे छीलकर सुखा लिये जाते हैं तो फिर उनसे दाना छुड़ाया जाता है। इसके लिए छोटी-मोटी कलें भी होती हैं। हाथ से भी दाने छुड़ाये जाते हैं परन्तु सबसे सरल और जल्दी दाना छुड़ाने की रीति यह है कि मोटी लाठियों से भुट्टों को पीटा जाय। जब घरों में पीटते हैं तो बहुधा कोनों में पाटते हैं जिसमें बीज उड़ने न पाये। जब मैदान में पीटते हैं तो दो ओर कपड़ा बाँध देते हैं। अच्छी पिटाई होने पर भी कुछ बीज डूँडियों के टुकड़ों के साथ रह जाते हैं उन्हें हाथ से छुड़ाते हैं। फिर डूँडियों को चुन डालते हैं और बीज तथा महीन चूरे को फटककर या हवा में उड़ाकर दाना भूसा अलग कर लेते हैं।

मक्का की उपज प्रति एकड़ का अनुमान करना कठिन है। इसकी उपज जैसा कि पहले कहा गया है आवश्यकतानुसार पानी मिलने पर है। यदि सब स्थितियाँ अनुकूल हों तो मक्का की उपज पच्चीस-तीस मन प्रति एकड़ से भी ऊपर पड़ जाती है। लेखक के निज के प्रयोगों में एक साल ३२ मन मक्का और १४० मन कड़बी की उपज प्रति एकड़ हुई थी। यदि स्थितियाँ प्रतिकूल हो जायँ तो पाँच मन उपज प्राप्त करना कठिन हो जाता है।

उपर्युक्त उपज जो साधारण से अधिक कही जा सकती है उसको छोड़कर पाँच साल की औसत उपज पर गणना की तो बीज की उपज १३ मन, कड़बी की ५४ मन तथा बीज रहित भुट्टे की ४ मन प्रति एकड़ आई। ये अंक पूसा (बिहार) के हैं। डथी और फूलर महोदय उत्तर प्रदेश की उपज १० मन बरानी खेतों की और १४ मन प्रति एकड़ सिंचाई के खेतों की मानते हैं। राबर्ट महोदय (पंजाब) सिंचाई वाली भूमि से २० मन की उपज आंकते हैं। मॉलीसन महोदय पंचमहाल (गुजरात) जहाँ मक्का की खेती बहुत होती है वहाँ पन्द्रह मन से बीस मन की उपज का अनुमान उचित समझते हैं।

वितरण और व्यवसाय

भुट्टे पकते ही कृषक लोग वैसे ही हरे भुट्टे कुछ बाँट देते हैं वरना गेहूँ, ज्वार और धान जैसी इसकी माँग नहीं होती। बीज के लिए प्रायः सब कृषक भुट्टे चुनकर रख लेते हैं। बोने के लिए यदि दस सेर प्रति एकड़ रक्खा जाय तो लगभग सोलह लाख मन अनाज बीज के लिए रखना होता है जो कुल उपज का लगभग तीन शतांश होता है, शेष मक्का बहुधा खाने के ही काम में लाई जाती है। कहीं-कहीं पशुओं को भी खिलाते हैं।

अन्तर प्रदेशी व्यवसाय इसका बहुत थोड़ा है। स्थानीय व्यापारी ही खरीद कर रख लेते हैं और बाद में बेचते रहते हैं।

विदेशों से व्यवसाय भी नहीं है। जापान कुछ मक्का खरीदता था वह भी बहुत ही कम। आयात तो बिलकुल नहीं है।

उपयोग और गुण

मक्का के पोषक पदार्थ—

जल आमिष-जातीय स्नेह सर्करायुक्त खनिज
सफेद मक्का १३.५२% ६.१२% ३.६२% ७०.५०% १.२२%
पीली मक्का १३.४५% ६.१६% ५.१०% ६८.८८% १.३४%

ये अंक विनटन^१ महोदय की पुस्तक से लिये गए हैं क्योंकि उसमें दोनों प्रकार की मक्का के अंक दिये हैं। इन अंकों से ज्ञात होता है कि पोषण के विचार से सफेद की अपेक्षा पीली मक्का अच्छी होती है। पीली में खद्योज 'ए' रहते हैं जो सफेद में नहीं के बराबर ही होते हैं। इनके सिवाय मक्का में दूसरे उपयोगी पदार्थों में ०.०१ शतांश खटिक Ca, ०.३३ शतांश फा० पे० और ०.००२१ शतांश लोहा भी होता है। केलोरी प्रति छटांक १६४ रहती है।

गुण—हरी मक्का पुष्टिकारक होती है। सूखी मलरोधक और रूखी होती है। भुट्टे की मूछ का सत अमेरिका में दिल तथा पेशाब की बीमारियों में काम में लाया जाता है।

हरे भुट्टे आग में भूनकर खाये जाते हैं। कुछ लोग उबालकर नमक लगा करके भी खाते हैं। हरे बीज का मसालेदार नमकीन हलवा भी अच्छा बनता है। मीठी खीर भी बनाई जा सकती है। भुने हुए भुट्टे सुखाकर रख देते हैं या उनके दाने निकालकर रख लेते हैं और जब इच्छा होती है उन्हें उबालकर नमकीन 'घुघरी' बनाकर खाते हैं।

सूखे मक्का का दलिया बनाया जाता है। इसे भूँजकर आटा बनाते हैं और सत्तू की भाँति खाते हैं। कच्ची मक्का का आटा बनाकर रोटियाँ बनाई जाती हैं। इसका आटा अधिक दिनों तक नहीं ठहरता क्योंकि

^१ Winton. 1932. Structure and Composition of foods, P.30.

इसके अंकुर में तेल रहता है जो बिगड़ जाता है, और आटा कड़ुआ हो जाता है इसलिए ताजा ही पीसकर रोटी बनाई जाती है। आटे से पापड़, सेव, लड्डू इत्यादि पदार्थ भी बनाये जाते हैं^१। कारखानों में 'कार्न फ्लोर' के नाम से जो आटा बनता है उसकी तैयारी के पहले कलों द्वारा अंकुर अलग निकाल दिये जाते हैं। सूखी मक्का को भाड़ में भुनवाकर उसके फूले फुटाहा बनाकर भी खाते हैं। जिस मक्का के बीज में ११ से १५ शतांश तक जल रहता है उसके फूले अच्छे फूटते हैं।

व्यवसायिक पदार्थों में 'कार्न फ्लोर' स्टार्च, मक्का का तेल 'कार्न प्लेक्स', 'शराब', 'ब्यूटेनॉल', 'एसीटोन' इत्यादि पदार्थ बनाते हैं। मक्का का तेल बीज के अंकुरों का होता है जो खाने के काम में लाया जाता है और अन्य व्यवसाय में भी काम आता है। खली पशुओं को खिलाई जाती है। 'कार्नप्लेक्स' जिसे मक्का का चिवड़ा कह सकते हैं बीच में से अंकुर निकालकर उन्हें उबालते हैं और फिर दबाकर सुखाते हैं। सूखे हुए दाने अर्थात् चिवड़े का उपयोग चावल के चिवड़े जैसा किया जाता है।

डूँडिये (बीज रहित भुट्टे) जलाने के लिए काम में लाये जाते हैं। इनकी राख में पोटाश बहुत होता है सो जहाँ पोटाश के खाद की आवश्यकता हो वहाँ डाल सकते हैं। डूँडियों से बोतलों के कार्क भी बन सकते हैं। चरी पशुओं को खिलाई जाती है। आवश्यकता पड़ने पर दूसरे चारे के अभाव में कड़वी भी पशुओं को खिलाई जाती है। साया के लिये इससे टट्टे भी बाँधते हैं। इससे कागज और कार्ड-बोर्ड भी बन सकते हैं। जब किसी काम में नहीं आती तो जलावन के काम में

^१ १९४६ में दिल्ली में कन्ट्रोल की वजह से चना और बेसन बाजार से गायब हो गये थे। उस समय श्रीमती व्यास ने मक्का के आटे से पापड़, सेव, लड्डू इत्यादि बनाकर देखे तो अच्छे स्वादिष्ट बने थे। यदि मक्का के आटे में चौथा हिस्सा चावल का आटा मिला दिया जाय तो पापड़ और भी अच्छे बनते हैं।

आती है ।

हरी चरी वैसे तो पशुओं को खिलाई जाती है । परन्तु यदि अधिक हुई तो उससे 'सायलेज' बनाते हैं जैसा ज्वार की चरी से बनाते हैं ।

भुट्टों की मूछ का सत औषधि के काम में लाया जाता है । दिल तथा पेशाब की बीमारियों में इसका उपयोग किया जाता है ।

: ८ :

कंगनी, राला, Italian millet Foxtail millet *Setaria, italica*

जहाँ-जहाँ ज्वार की खेती हो सकती है वहाँ कंगनी की खेती भी हो जाती है। चूँकि इसकी आयु ज्वार से कम होती है कम वर्षा से भी यह पक जाती है।

कंगनी का पौधा तीन साढ़े-तीन फुट से लेकर अच्छी भूमि में चार-पांच फुट ऊँचा हो जाता है। पत्ते डेढ़-दो फुट लम्बे और करीब एक इंच चौड़े होते हैं। बाल इसका सात-आठ इंच लम्बा करीब एक इंच व्यास का होता है। उस पर छोटे-छोटे रोंगें भी होते हैं। बीज के वजन से बाल झुक जाता है। कंगनी सफेद, पीली और स्लेटी रंग की होती है।

जलवायु

इसके लिए उष्ण और तर वातावरण अच्छा होता है। वर्षा जब फूल आने लगे उस वक्त हो जाय तो कुछ हानि करती है। कंगनी की आयु तीन-चार महीने की होती है और चूँकि बरसात में ही बोई जाती है अतः बीस-पच्चीस इंच वर्षा इसके लिए काफी होती है। वैसे तीस इंच तक हो जाय तो और भी अच्छा है।

भूमि और जुताई

कंगनी के लिए दुमट और बलुआ दुमट मिट्टी अच्छी होती है परन्तु दुमट में तो ज्वार, मक्का जैसी अधिक मूल्य वाली वस्तुएँ लगाई जाती हैं, कंगनी को तो बलुआ दुमट में ही स्थान मिलता है। चूँकि इस फसल पर पक्षियों का आक्रमण बहुत होता है बहुधा कंगनी गाँव के निकटवर्ती खेतों में लगा देते हैं ताकि रखवाली ठीक से हो सके।

जुताई—इसके लिए ग्रीष्म ऋतु में एक बार हल और एक बार

बखर चलाकर जमीन तैयार कर लेनी चाहिए। उसके बाद वर्षा में एक बार बखर चलाकर कंगनी बो सकते हैं। जो कंगनी माघ में बोई जाती है उसके लिए सर्दी में खेत तैयार करके क्यारियाँ बना लेनी चाहिए क्योंकि ऐसी फसल सिंचाई के बिना नहीं होगी।

खाद और फसल का हेरफेर

कंगनी में खाद्य पदार्थ—

	जल	ना०	खनिज पदार्थ
बीज	१०.४६%	१.७६%	३.६३%
चरी	१०.००%	१.८६%	१६.०२%

कंगनी के अंक बम्बई, आसाम तथा पंजाब की कंगनी के पृथक्करण के औसत अंक हैं। चरी वाले अंक पंजाब की चरी के हैं।

कंगनी की उपज बरानी खेतों की चार-पाँच मन हो जाती है। सिंचाई वाले खेतों में इससे दुगुनी भी हो जाती है। भूसे की उपज बीज की उपज से दुगुनी-तिगुनी हो जाती है।

इस हिसाब से गणना की जाय तो पाँच मन की उपज के लिए बीज में ३.५ सेर और भूसा में यदि ०.५ शतांश मानकर गणना की जाय तो २ सेर ना० भूसे की पड़ी। ऐसे कुल ना० ५.५ सेर हुई।

सूखी चरी की उपज तीस मन तक हो सकती है उसमें भी ५.५ सेर ना० पड़ेगी। इतनी ना० पहुँचाने के लिए हमें कृत्रिम खाद एमोनियम सलफेट करीब ७ मन या खली का खाद २.८ मन या गोबर का खाद दुगुनी मात्रा के लिए ५६ मन देना होगा। सिंचाई वाले खेतों में उपर्युक्त मात्रा से दुगुनी मात्रा देनी होगी। चूँकि कंगनी भी काफी सस्ती विकती है इसके लिए भी आर्थिक दृष्टि से खाद देना लाभप्रद नहीं होगा। लेकिन अगली फसल का ध्यान रखते हुए गोबर का खाद हो सके तो अवश्य देना चाहिए।

मिश्रण और हेरफेर—कंगनी की फसल बहुधा अकेली ली जाती है। कभी-कभी मूँवा, कपास या मक्का के खेतों में भी डाल देते हैं। कंगनी

के बाद रबी की कोई भी फसल ले सकते हैं; लेकिन जहाँ तक हो गेहूँ न लेकर जो किराओ का मिश्रण, चना, मसूर या सरसों लेना ठीक होगा। बिहार में बहुधा शकरकन्द लगा देते हैं^१।

बीज और बोआई

कंगनी का बीज भी कृषक अपने ही रख लेते हैं। या अपने मित्रों से ले लेते हैं, क्योंकि एक तो बीज बहुत कम लगता है और दूसरे यदि प्रत्येक कृषक के विचार से देखा जाय तो क्षेत्रफल बोया भी बहुत कम जाता है।

यदि छींट कर बोना हो तो पाँच सेर और यदि कतारों में बोना हो तो चार सेर बीज प्रति एकड़ बोना होगा।

कंगनी बरसात में आषाढ़ से लेकर श्रावण तक बोई जा सकती है, परन्तु अधिकतर आषाढ़ (जून) में ही बो देते हैं। कहीं-कहीं बरसात के पहले ही बो देते हैं ताकि पानी गिरते ही बीज अंकुर फेंक दे और पीछे निकल आवें। जितनी देरी से बोई जायगी उधर फसल उतनी ही देरी से तैयार होगी। बोने के समय से तीन-चार महीने में फसल तैयार होगी। ऐसी स्थिति में दूसरी फसल के लिए जमीन तैयार न हो सकेगी। इसमें इतना लाभ अवश्य है कि यदि कम वर्षा देरी से हो तो कंगनी लगाना ठीक होगा। सर्दी के अन्त में कंगनी बोई जा सकती है परन्तु उसे सिंचाई से तैयार करना होता है। चरी की फसल जब आवश्यकता हो बो देते हैं।

कंगनी के बीज छींटकर भी बोये जाते हैं और कतारों में भी बोते हैं। जब कतारों में बोना होता है तो हल के पीछे बीज डाल सकते हैं अथवा हलके तिफन या नाली वाले हल से भी बो सकते हैं। जब छींटकर बोये जायें तो कील वाले हेरो से अथवा दतारी से बीज मिट्टी में मिला देने चाहिए। कतारों में कंगनी बोई जाय तो उनमें नौ इंच की दूरी रखनी चाहिए। निंदाई के समय पौधों में चार इंच से छः इंच का अन्तर जमीन की उर्वरा शक्ति अनुसार कर देना चाहिए। छींटकर बोई जाने वाली कंगनी के पौधों की छटाई ऐसी करनी चाहिए जिसमें पौधों में छः-सात

इंच का अन्तर हो जाय । जो कंगनी चरी के लिए बोई जाती है उसके पौधों की छटनी नहीं की जाती ।

निंदाई और देखभाल

कंगनी को एक बार नींद देना चाहिए और निंदाई के समय पौधों का अन्तर निर्माण कर देना चाहिए । पौधों को ऊपर बतलाई हुई दूरी पर कर देना चाहिए । कंगनी पर छोटे-छोटे पक्षियों का आक्रमण बहुत होता है अतः बीज पकने लगे उस समय रखवाली करनी चाहिए ।

सिंचाई

सर्दी के अन्त में माघ-फाल्गुन में जो फसल बोई जाती है उसे अथवा चरी जो ग्रीष्म ऋतु में बोई जाय तो उसे सींचना होगा । जहाँ वर्षा बहुत कम होती है वहाँ खरीफ की फसल को भी बोन के पहले आवश्यकतानुसार पानी देना होगा ।

कीट और व्याधियाँ

कीट कोई खास ऐसे नहीं होते जिसके लिए विशेष परिश्रम किया जाय । व्याधि में कभी-कभी बाल में बीज न आकर बाजरे में जैसे पत्ते आ जाते हैं कंगनी में भी वैसे आ जाते हैं । सो यदि ऐसे पौधे दिखें तो उन्हें नष्ट कर देना चाहिए ।

बीज को सुरक्षित रखने के लिए साधारण नियम ध्यान में रखने चाहिए ।

फसल की तैयारी और उपज

कंगनी की फसल बोन के समय से तीन-चार महीने में तैयार हो जाती है । पक जाने पर बाल पहले काट लिये जाते हैं और बाद में भूसा या तो काट लिया जाता है या पशुओं को चरा दिया जाता है । बाल जब कम होते हैं तो उन्हें डण्डे से पीटकर बीज छुड़ा लेते हैं । इसका बीज बहुत जल्दी छूट जाता है । इसलिए पाँव या हाथों से मलकर छुड़ा लेते हैं और फटककर साफ कर लेते हैं । जब फसल अधिक होती है तो

गाहनी बैलों से भी करा लेते हैं और हवा में उड़ाकर बीज से भूसा अलग कर लेते हैं।

कंगनी जब बिना सिंचाई के उपजाई जाती है तो प्रति एकड़ चार-पांच मन हो जाती है। जहाँ खाद और सिंचाई का प्रबन्ध रहता है वहाँ दस-बारह मन तक भी उपज हो जाती है। कंगनी और भूसे की उपज बीज से दुगुनी से तीन गुनी तक हो जाती है। चरी की उपज तीस-चालीस मन तक हो जाती है।

वितरण और व्यवसाय

अधिकतर जिन कृषकों के यहाँ कंगनी होती है वे ही इसका उपयोग कर लेते हैं। यदि थड़ा-बहुत व्यवसाय हुआ भी तो वह स्थानीय साहूकारों के हाथ में रहता है।

उपयोग और गुण

कंगनी में पोषण द्रव्य—

जल	आमिष-जातीय	स्नेह	खनिज	सर्करा जातीय
११.२%,	१२.३%,	४.७%,	३.२%,	६०.६%.
खटिक Ca	फा०	लोहा	खाद्योज ए	खाद्योज बी
०.०३%,	०.२६%,	०.०६३%,	५४ युनिट,	१६५ युनिट

उष्णोत्पादक शक्ति १६० केलोरी प्रति छटाँक।

इसकी तुलना गेहूँ से की जाय तो ज्ञात होगा कि कंगनी की पोषण शक्ति गेहूँ से थोड़ी-सी कम है। लेकिन ज्वार से आमिष-जातीय पदार्थ और स्नेह की मात्रा कंगनी में विशेष है। कंगनी के साथ भी कुछ पुटपत्र लगे रहते हैं इसलिए इसे ओखली में कूट कर पहले तैयार करते हैं। फिर कच्ची या कुछ भूँजकर उसका आटा बना कर रोटी भी बना सकते हैं। लेकिन बहुधा दलिया ही बनाकर खाते हैं।

कंगनी शीतल, दाह-नाशक और पित्त के विकारों को दूर करनेवाली होती है।

भूसा पशुओं को खिलाया जाता है।

कोदो, कोदरा *Kodo Paspalum scrobiculatum*.

कोदों की खेती हल्की ज़मीन के लिए अच्छी होती है। यद्यपि बाढ़ का समय मरुवा और कंगनी से अधिक है परन्तु कम वर्षा वाले स्थानों में भी कोदो हो जाता है।

कोदो का पौधा दो-तीन फुट ऊँचा होता है। अच्छी उपजाऊ भूमि में कुछ और ऊँचा भी हो जाता है। इसके पत्ते कंगनी-जैसे होते हैं। बाल सिर पर निकलता है और पकते समय तक अन्तिम पत्ते में छिपा रहता है। दो-एक जातियाँ ऐसी भी हैं जिनके बाल बाहर निकल जाते हैं। बीज सरसों इतना बड़ा लेकिन चपटा कुट्टू जैसा होता है। बीज वाली पंखड़ियाँ डण्डी के एक ही ओर रहती हैं।

जलवायु

कोदो के लिए बीस से पच्चीस इञ्च वर्षा वाले स्थान अच्छे होते हैं। इसकी बाढ़ के लिए उष्ण और तर वातावरण लाभप्रद होता है। अंकुर फेंकने के लिए भूमि में अच्छी तरी होनी चाहिए, क्योंकि इसपर जो छिलका लगा रहता है उसे गलना चाहिए। यही कारण है कि कोदो के बीज बहुत दिनों में अंकुर फेंकते हैं।

भूमि और जुताई

कोदों की फसल कनिष्ठ फसल ही समझी जाती है और बहुत हल्की जमीन में बीज छोट देते हैं या कतारों में बो देते हैं। इसके लिए बलुआ या बलुआ-दुमट जमीन ही काम में लाई जाती है। जुताई भी बहुत साधारण-सी दी जाती है, फिर भी एक बार हल, एक बार बखर वर्षा के पहले और एक बार वर्षारम्भ के साथ अवश्य ही देना होता है। बाढ़ में बखरी हुई जमीन में कोदों बो देते हैं।

खाद और हेरफेर

कोदों में खाद्य पदार्थ—

	जल	ना	खनिज
बीज	८.७८%	१.०२%	३.१२.०२
बीज पर का छिलका	१०.५६%	७.८%	८.०%

कोदो की उपज पांच-छः मन से लेकर दस-गारह मन प्रति एकड़ हो जाती है। यदि दस मन उपज मानकर गणना की जाय तो बीज में ४ सेर ना० पड़ती है। उतनी ना० भूसे में मान ली जाय तो ८ सेर ना० पहुँचे इतना खाद देना चाहिए। जिसके लिए कृत्रिम खाद एमोनियम सल्फेट १ मन या खली ४ मन या गोबर का खाद ८० मन के लगभग डालना चाहिए, परन्तु इसके लिए भी कृत्रिम खाद पर द्रव्य लगाना आर्थिक दृष्टि से ठीक नहीं होगा। हो सके तो गोबर का खाद अवश्य देना चाहिए जो कि बहुधा घर के पशुओं का होता है।

हेरफेर—कोदों के साथ कभी-कभी कपास, ज्वार, अरहर या तिल जैसी फसल लगा देते हैं। कोदों को तैयार होने में जाति अनुसार लगभग चार महीने से छः महीने लगते हैं इसलिए उसी साल में दूसरी फसल लेना हो तो ग्रीष्म ऋतु में चरी की फसल ली जा सकती है वरना फिर बरसात में ही दूसरी फसल लगानी होगी सो कोई भी खरीफ की फसल लगा सकते हैं। कहीं-कहीं रबी की फसल में मसूर और किराग्रो भी बो देते हैं।

बीज और बोआई

कोदों के बीज भी कृषक अपने ही रख लेते हैं, अथवा अपने मित्रों से खरीद लेते हैं। कोदों को नम्बरी जातियों में इ० बी० १ नं० ११० नं० १३ अच्छी मानी गई है। कोदों वर्षारम्भ के साथ ही जल्दी से भूमि तैयार करके बो देते हैं। कभी-कभी वर्षा के पहले ही बो देते हैं। लेकिन जहाँ यह भय हो कि पहला पानी हलका-सा होकर कुछ खींच कर जायगा तो वहाँ अच्छी बर-

सात हो जाने पर ही बोना चाहिए क्योंकि कोदों का छिलका बड़ा कठोर होता है और बीज के अंकुरित होने के लिए काफी तरी की आवश्यकता होती है। करीब सात-आठ सेर बीज प्रति एकड़ बोया जाता है। इसे बहुधा छींटकर ही बोते हैं। छींट देने के पश्चात् बीज मिट्टी में मिला दिये जाते हैं जिसके लिए थोड़ी जमीन हो तो दतारी और अधिक हो तो खूँटी वाला हेरो काम में लाया जा सकता है। निदाई के समय छंटनी करके पौधों में चार-पाँच इंच की दूरी कर देनी चाहिए। कोदों को कतारों में हलके तिफन या नली वाले हल से भी बो सकते हैं। कतारों में छः इंच का अन्तर रखना चाहिए। प्रत्येक कतार में पौधे तीन-चार इंच की दूरी पर रखना चाहिए।

निदाई और देखभाल

पौधों की छंटनी के साथ-साथ एक बार निदाई कर देनी चाहिए। छंटनी करते समय पौधों को ऊपर बतलाई हुई दूरी पर कर देना उत्तम होगा। पक्षियों से बचाव के लिए रखवाली नहीं करनी पड़ती क्योंकि पक्षी इसे हानि नहीं पहुँचाते।

सिंचाई

बहुधा नहीं की जाती, परन्तु जहाँ वर्षा बहुत कम होती है वहाँ कोदों उपजाना हो तो बोने के पहले और बाद में भी आवश्यकतानुसार सिंचाई करनी होगी।

कीट और व्याधियाँ

ऐसी हानि इनसे नहीं होती जिसके लिए विशेष प्रयत्न किया जाय। कहीं-कहीं हरेदे Rust और कायमे Smut वाले पौधे हो जाते हैं। ऐसे पौधे दीखें तो उन्हें नष्ट कर देना चाहिए। गोदाम में भी कोदों को हानि नहीं पहुँचती।

फसल की तैयारी और उपज

कोदों की फसल आषाढ़ (जून) में जो बोई जाती है वह कार्तिक (अक्तूबर) में काटी जाती है। थोड़ी फसल की गहाई ढण्डों से पीटकर

और अधिक की बैलों से की जाती है।

कोदों की उपज हलकी जमीन में चार-पाँच मन तक हो जाती है अच्छी जमीन में दस-बारह मन तक भी पहुँच जाती है। कड़वी की उपज बीज से दुगुनी हो जाती है।

वितरण और व्यवसाय

बहुधा कृषक अपने खाने के लिए ही काम में ले आते हैं। यदि कुछ बिका तो दूसरे कृषक या स्थानीय व्यवसायी ले लेते हैं।

उपयोग और गुण

कुटे हुए कोदों के पोषक द्रव्य—

जल	आमिष-जातीय	स्नेह	खनिज	तन्तु	सर्करा जातीय
१२.८%	८.३%	१.४%	२.६%	६.०%	६५.६१%
खटिक	फा०		लोहा		खाद्योज बी
०.०४%	०.२४%		०.००५२%		११० युनिट

उष्णोत्पादक शक्ति १७४ केलोरी प्रति छटांक

इन अंकों की तुलना मडुवा के अंकों से की जाय तो मालूम होगा कि दोनों की पोषण शक्ति करीब-करीब बराबर है। कोदों के बीज बड़े कठोर छिलके वाले होते हैं अतः इन्हें बहुत कूटना पड़ता है। बहुधा मिट्टी के पाट की चक्की में दलकर छिलका छुड़ाया जाता है। पचास से साठ शतांश तक ही उपयोगी पदार्थ मिलता है। इसे चावल की भांति उबाल कर खाते हैं। खीर भी बनाई जा सकती है। इसके बीज में कुछ मादकता होती है परन्तु वह शायद किसी-किसी जाति में ही होती है जो बीज में अधिक सील लग जाने से होती होगी। साधारण कोदों को तो इण्डियन एग्रीकल्चरल रिसर्च इन्स्टीट्यूट के रसायन विभाग के कई व्यक्तियों को खिला कर देखा गया तो कुछ असर नहीं पाया। कोदों मल-रोधक, वातकारक, शीतल तथा पित्तनाशक होता है।

कोदों का भूसा पशुओं को खिलाया जाता है परन्तु वह ज्वार की कड़वी जैसा पोषक नहीं होता। घोड़ों के लिए हानिकारक होता है।

चीना, वारी Cheena Common millet, Bread millet

Panicum miliaceum

चीना का पौधा दो-ढाई फुट से लेकर तीन-चार फुट ऊँचा होता है। इसके पत्ते साँवाँ जैसे ही होते हैं, परन्तु उससे कम चौड़े होते हैं। बाल बिखरे हुए होते हैं और एक ओर ही झुके हुए रहते हैं। बीज कुछ पीले रंग के चिकने और चमकीले होते हैं। चीना की दो-चार जातियाँ उत्तरप्रदेश में बुन्देलखण्ड की तरफ होती हैं।

खरीफ की फसल की दो जातियाँ हैं। फिकाई और राली इनमें की पहली जल्दी बोई जाती है और अधिक उपज देती है।

चीना की फसल साल भर में दो-तीन बार हो जाती है। अधिकतर माघ-फाल्गुन (जनवरी-फरवरी) में बोया जाता है।

जलवायु

साँवाँ के लिए जैसी जलवायु चाहिए वैसी ही चीना के लिए भी अच्छी होती है।

भूमि और जुताई

इसे भी अच्छी भूमि उसी स्थिति में मिलती है जब यह फसलों के हेर-फेर में पड़ जाता है अन्यथा हल्की जमीन में ही बो दिया जाता है। जो चीना माघ-फाल्गुन में बोया जाया है उसे सींचना पड़ता है। सो पानी की जहाँ पहुँच हो ऐसी भूमि ही चुननी चाहिए। जुताई के लिए एक बार हल और एक-दो बार बखर चला देना उत्तम होगा। ग्रीष्म ऋतु वाली फसल के लिए अन्तिम जुताई के बाद क्यारियाँ बना लेनी चाहिए।

खाद और फसल का हेरफेर

चीना में खाद्य पदार्थ—

	जल	ना०	खनिज
बीज	६.७८	१.५४	२.२४

चीना की उपज बरानी खेतों में तीन-चार मन और सिंचाई वालों में पांच-छः मन तक हो जाती है।

पाँच मन उपज मानकर खाद की गणना की जाय तो बीज के लिए प्रति एकड़ तीन सेर ना० और उतनी ही भूसे में मिलेगी। अर्थात् ६ सेर ना० पहुँचे इतना खाद देना होगा जिसके लिए

कृत्रिम खाद एमोनियम सल्फेट ७५ मन

या खली की खाद ३० मन

या गोबर का खाद दुगुनी मात्रा के लिए ६०० मन

देना चाहिए परन्तु चीना के बहुत सस्ता विकने के कारण आर्थिक दृष्टि से इसे भी कृत्रिम खाद अथवा खली का खाद नहीं दिया जाता। गोबर का खाद हो सके तो देना चाहिए।

हेरफेर—चीना का हेर-फेर किसी भी फसल के साथ हो सकता है। इसे खरीफ की अन्य फसलों के साथ भी बो सकते हैं।

बीज और बोआई

चीना के बीज भी कृषक अपने ही रख लेते हैं अथवा मित्रों से खरीद लेते हैं।

इसकी साल भर में दो-तीन फसल हो जाती है। पहली फसल तो आषाढ़ (जून) में ही बोई जाती है। दूसरी कुछ देरी से भाद्रपद में और तीसरी माघ-फाल्गुन (जनवरी-फरवरी) में बोई जाती है। बीज छोट-कर ही बोये जाते हैं। चार-पाँच सेर बीज प्रति एकड़ छोटना होता है। छोटने के पश्चात् दतारी या कील वाले हेरो से बीज मिट्टी में मिला देना चाहिए। :श्रीष्म ऋतु वाली फसल के लिए क्या रियायें बनाकर उनमें बीज छोट देते हैं और दतारी से मिलाकर पानी भी देते जाते हैं।

निंदाई और देखभाल

बन पड़े तो एक निंदाई दे देते हैं। देख-भाल पशु-पक्षी से रक्षा के लिए करनी होती है।

कीट और व्याधियाँ

साधारण टिड्डे इत्यादि के सिवाय ऐसी कोई खास व्याधि नहीं होती जिसके लिए विशेष ध्यान दिया जाय। कहीं-कहीं कायमे (Smut) और हरदे (Rust) के पौधे हो जाते हैं सो उन्हें उखाड़कर नष्ट कर देना चाहिए।

फसल की तैयारी और उपज

बोने के समय से तीन-चार महीने में फसल तैयार हो जाती है जिसे काटकर खलिहान में ले जाते हैं। जहाँ पर यदि फसल थोड़ी हुई तो पीटकर दाना-भूसा अलग कर लेते हैं। अधिक फसल होने से गाहनी बैलों से करते हैं। उपज तीन-चार मन बरानी में तथा छः-सात मन सिंचाई वाले खेतों में हो जाती है।

वितरण और व्यवसाय

कृषक स्वयं ही इसका उपयोग कर लेते हैं। व्यवसाय इतना माल होता ही नहीं, यदि थोड़ा-बहुत हुआ तो स्थानीय व्यवसायी ही कुछ उलट-फेर करते रहते हैं।

उपयोग और गुण

चीना में पोषक द्रव्य—			प्रतिशत		
जल	आमिषजातीय	स्नेह	खनिज	सर्करायुक्त	खटिक Ca
११.६	१२.५	१.१	३.४	६८.६	०.०१
फा०	लोहा Fe			उष्णोत्पादक शक्ति	
०.३३	५.७			१६० केलोरी प्रति छटाँक	

स्नेह को छोड़कर अन्य पदार्थ कंगनी के बराबर हैं । कोदों, सांवा और रागी से चीना में पोषण-शक्ति विशेष है । चीना को छाँटकर इसका भात भी बनाते हैं और आटा बनाकर रोटियाँ भी बनाई जाती हैं । खीर भी बनाई जा सकती है । भूसा पशुओं को खिलाया जाता है । चीना शीतल, हलका और मलरोधक होता है ।

मरुवा, रागी, Marua, Ragi Finger Millet

Eleusine Coracana

मरुआ को दक्षिण भारत में रागी कहते हैं। चूँकि इसकी खेती दक्षिण भारत में विशेष होती है सरकारी रिपोर्टों में इसका नाम रागी ही दिया जाता है। गुजरात में बावटो या नागली और पूना की तरफ नाचनी कहते हैं।

मरुआ साधारण भूमि में कम समय में अच्छी उपज देनेवाला धान्य है। इसे कीट वगैरह गोदाम में भी हानि नहीं पहुँचाते और सील से बचाकर रखा जाय तो वर्षों नहीं बिगड़ता। जहाँ पर अकाल का भय हो वहाँ इसका रखना अच्छा होगा।

मरुआ का पौधा तीन-चार फुट ऊँचा होता है। पत्ते गेहूँ के पत्ते जैसे ही होते हैं। बाल जो कि पौधों के सिर पर निकलते हैं चार से छः पंखड़ी वाले होते हैं। बीज भूरे रंग के छोटी सरसों जैसे होते हैं।

व्यापारिक वर्गीकरण

अन्य फसलों की भाँति इसके व्यापारिक नाम विशेष नहीं हैं। मरुवा दो जाति का होता है। एक में पके हुए बाल की पंखड़ियाँ मुड़ी हुई होती हैं और दूसरे की सीधी रहती हैं। पहले से बीज की उपज अधिक मिलती है। बीज के रंग तथा आकार से ही इसका मूल्य ठहराया जाता है।

जलवायु

मरुआ के लिए पचीस-तीस इंच वर्षा अच्छी होती है। इससे अधिक होने से उपज गिर जाती है। ऐसा देखा गया है कि जिस साल अधिक वर्षा से धान अच्छा होता है उस साल मरुआ अच्छा नहीं होता। उपर्युक्त वर्षा से कम वर्षा वाले स्थानों में साबां, चीना इत्यादि

बोना ठीक होगा। अंकुरित होने तक बाढ़ के लिए उष्ण और तर वातावरण उत्तम होता है। बाल फूटने के पहले पानी गिर जाय तो अच्छा होता है; परन्तु यदि फूटने के बाद बीज पकते समय पानी अधिक हो जाय तो कुछ हानि हो जाती है।

भूमि और जुताई

मरुआ ऐसा है कि हर प्रकार की मिट्टी में हो जाता है परन्तु आर्थिक दृष्टि से बहुधा हल्की मिट्टी में ही स्थान मिलता है। वैसे फसलों के हेरफेर में पड़ने से अच्छी भूमि भी मिल जाती है। साधारणतः दुमट और बलुआ दुमट मिट्टी इसके लिए अच्छी होती है।

जुताई—मरुआ छोट कर कतारों में अथवा रोप लगाकर बोया जाता है। जब रोपा जाता है तो जेष्ठ (मई) में बीज नर्सरी में गिराए जाते हैं इसलिए नर्सरी जेष्ठ में तैयार करनी होती है। ऐसी नर्सरी को सींचना होता है सो यदि पानी निकट में न हो तो बरसात गिरने पर ही नर्सरी में बीज गिराना चाहिए। जब रोप पच्चीस-तीस दिन की आयु के हो जाते हैं तो उन्हें लगा सकते हैं। वर्षारम्भ के बाद खेतों को जोतकर तैयार कर लेने हैं। यदि पिछली फसल उठाने के बाद एक बार हल बखर चलाया जाय तो अच्छा ही होगा। उसके बाद बरसात में एक बार हल और एक बार बखर चला कर मरुआ के पौधे रोप सकते हैं। जहाँ रोप न लगाकर फसल सीधी खेतों में बोई जाती है वहाँ भी जुताई तो उपर्युक्त रीति से ही करनी होगी परन्तु वर्षारम्भ के साथ ही बीज छोट कर बो देना होगा इसलिए जमीन जल्दी तैयार करनी होगी। छोटने के बाद कील वाले हेरो से अथवा बखर जैसे हलके यन्त्र में पास न लगाकर कुछ कीले छः इंच लम्बी लगाकर उसे चला देने से बीज मिट्टी में मिल जायँगे। यदि क्षेत्रफल थोड़ा हो तो हाथ वाली दतारी से मिला सकते हैं। जहाँ हल चलाकर छोटते हैं वहाँ भूमि ऊँची-नीची रहती है उसमें छोट कर हेंगा चला देते हैं। ऐसा करने से बीज मिट्टी में दब जाते हैं।

बम्बई प्रदेश में पश्चिमीय घाट की तरफ पहाड़ों पर जमीन जला करके उसमें रागी बोते हैं। जलाने की रीति चावल की खेती में दी गई है। जहाँ सिंचाई से मरुआ तैयार किया जाता है वहाँ अन्तिम जुताई के बाद क्यारियाँ बना लेते हैं और उन्हीं में रोप लगाये जाते हैं।

खाद और फसल का हेरफेर

रागी में खाद्य पदार्थ^१

प्रतिशत

जल	ना०	फा० पे०
१२.५	०.६४	०.४

रागी की उपज का भी कोई ठिकाना नहीं। आठ-दस मन से लेकर बीस मन तक बरानी में और इससे ड्योढ़ी उपज सिंचाई से कहीं-कहीं हो जाती है। लेकिन खाद की गणना के लिए पन्द्रह मन बीज और पचीस मन भूसा मानना उचित होगा।

पन्द्रह मन बीज में ५.८ सेर ना० हुई। भूसे में ०.५ शतांश ना० मानकर गणना की जाय तो ५ सेर भूसे में हुई। ऐसे ११ सेर ना० के लगभग होती है। इसके लिए कृत्रिम खाद एमोनियम सलफेट डाला जाय तो १ मन १५ सेर या खली का खाद ५.५ मन या गोबर का खाद ना० की दुगुनी मात्रा के लिए ११० मन होगा। उत्तर भारत में मरुआ को खाद कम ही दिया जाता है; लेकिन बम्बई तथा मद्रास की तरफ खाद देते हैं। बम्बई की तरफ लगभग पन्द्रह गाड़ी प्रति एकड़ डालते हैं जो करीब-करीब १२५ मन हो जाता है।

मैसूर में रागी की खेती बहुत ज्यादा होती है। वहाँ खाद भी बहुत देते हैं। इसके लिए तालाब की मिट्टी भी डाली जाती है। बीज खाद के

१ उपर्युक्त अंक चर्च महोदय के हैं। भारतीय रागी के लेखर और सेन महोदय ने भारत के भिन्न-भिन्न स्थानों की रागी की जाँच की तो ०.८६ से १.४८ शतांश तक ना० मिली। उन सबका औसत देखा गया तो १ शतांश के लगभग ना० की मात्रा पड़ी।

साथ मिला कर भी छींट देते हैं। एक गांभी खाद में एक सेर बीज मिला देते हैं। खली का खाद भी दिया जाता है। कृत्रिम खाद में एमोनियम सल्फेट २५ सेर ना० पड्डे इतना और २० सेर फा० पे० पड्डे इतना सुपर फास्फेट देते हैं।

वैद्यनाथ महोदय ने मद्रास के कुछ प्रयोग अपनी पुस्तक में दिखलाये हैं। उन्हें देखने से पता चलता है कि आर्थिक दृष्टि से रागी को खाद देना लाभप्रद नहीं जँचता। लेकिन रागी के बाद दूसरी फसल जो ली जाती है उसपर बुरा असर न पड़े इसलिए रागी को खाद देना चाहिए।

हेरफेर—मरुवा का हेरफेर मक्का, शकरकन्द, जव, किराओ, मसूर, अलसी, ज्वार, अरहर, मूँगफली, कपास इत्यादि के साथ हो सकता है। जहाँ मरुवा के बाद रबी की फसल लेनी हो वहाँ गेहूँ या किराओ का मिश्रण भी ले सकते हैं, परन्तु गेहूँ की अपेक्षा जव किराओ लेना अच्छा है। चना या मसूर भी लेना अच्छा होता है। सरसों की फसल भी ली जा सकती है। मरुवे के साथ तिल, कोदो, मक्का ज्वार, अरहर इत्यादि भी बो देते हैं। बहुधा ऐसा भी होता है कि अरहर या उड़द वर्षारम्भ के साथ कम बीज डालकर बो देते हैं। बाद में जब मरुवा के रोप तैयार हो जाते हैं तो बीच-बीच में जहाँ जगह खाली होती है वहाँ मरुवा रोपे देते हैं।

बीज और बोआई

रागी की जातियाँ अनेक नहीं हैं। कृषि विभाग वालों ने मद्रास और मैसूर में कुछ जातियाँ निकाली हैं जिन्हें नम्बर दे रखे हैं। मैसूर नं० एच. २२ अच्छी उपज देती है। मद्रास में ई० सी० ५६३, नं० ५२०, बी० बी० ५, बी० जेड० एम० ८, नं० ३३ और ४२, नं० ३५१७, ३७३५, ३०३० इत्यादि जातियाँ अच्छी पाई गई हैं। ई० सी० ५६३ बरसात में बरानी खेतों में और पूष-माघ में सिंचाई वाले खेतों में अच्छी उपज देती है।

बीज की प्राप्ति

रागी के बीज रखने में कोई कठिनाई नहीं है। एक तो बीज लगता ही बहुत थोड़ा है इसलिए मटकों या कोठियों में भर कर या अन्य किसी बर्तन में भर कर रख सकते हैं। इसे सील से बचाना जरूरी है इसलिए सूखे स्थान में रखना चाहिए अथवा बर्तन का मुँह चिकनी मिट्टी से बन्द कर देना चाहिए। बहुधा कृषकगण अपना-ही बीज रख लेते हैं। यदि नहीं हो तो सरकारी गोदाम से खरीद लेना चाहिए।

रागी का बीज इतना छोटा होता है कि रोप लगाये जायँ तो एक सेर बीज ही काफी हो सकता है, परन्तु इसकी मात्रा में पृथक-पृथक स्थान में विशेष अन्तर है। गुजरात में एकड़ के बीसवें भाग में तीन सेर बीज गिरा देते हैं जिससे एक एकड़ के लिए रोप मिल जाते हैं। कहीं-कहीं चार सेर तक भी गिराते हैं। छींटकर बोने के लिए भी चार सेर तक काफी होगा। उत्तर प्रदेश में बरसात के पहले ही ज्येष्ठ में बीज नर्सरी में गिरा देते हैं और सिंचाई से रोप तैयार करते हैं। एक एकड़ के रोप के लिए एकड़ का बीसवाँ हिस्सा नर्सरी के लिए लगाया जाय तो बहुत ठीक होगा। जब पौधे चार हफ्ते के हो जाते हैं और उधर बरसात के प्रारम्भ होते ही खेत तैयार कर लिये जाते हैं तो रोप लगा दिये जाते हैं। रोप आषाढ़ के अन्त तक भी लगा सकते हैं। जहाँ छींटकर या कतारों में बोना हो वहाँ वर्षारम्भ के बाद जल्दी से जमीन तैयार करके बो देना चाहिए। दक्षिण भारत में आषाढ़ (जून-जुलाई) और पौष-माघ (दिसम्बर-जनवरी) में भी बोते हैं। इस दूसरी फसल को सींचना होता है।

छींटकर बोने वाले कुछ कृषक तो ऐसे भी होते हैं जो रागी तो क्या पोस्ता को भी बिना किसी चीज के साथ मिलाये बराबर छींट देते हैं। लेखक ने अपने हलवाहों को पोस्ता के बीज बराबर बिना मिश्रण के छींटे हुए देखा है। जो कृषक ऐसा न कर सके उन्हें बालू या मिट्टी

के साथ मिलाकर छींटना चाहिए। गुजरात की तरफ मरुवा कतारों में बोया जाता है सो हलके तिल से बो देते हैं। कतारों में छः इंच की दूरी रखना ठीक होगा। कहीं-कहीं हलों के चांस में भी बीज गिराये जाते हैं। बोने के पश्चात् बीज को ढक देना चाहिए। इसके लिए हेंगा या पठार हो तो अच्छा और नहीं तो पेड़ की टहनी फिराना ही काफी होगा। छींटकर बोये हुए बीज मिट्टी में ठीक से मिल जाय इसलिए छींटने के पश्चात् खूँटी वाला हेरो चला देना चाहिए। जहाँ रोप लगाना होता है वहाँ पौधों में पांच-छः इंच का अन्तर रहे इतनी दूरी पर लगाना चाहिए। कमजोर भूमि में चार-चार इंच का अन्तर ही काफी होगा। सर्दी में रोपे जाने वाली फसल का रोप लगाने के साथ ही सींचना चाहिए।

निंदाई देखभाल

मरुवे में निंदाई करना पड़ती है। रोपने के पन्द्रह-बीस दिन बाद घास-पात की बाढ़ देखकर निंदाई कर देनी चाहिए। यदि बन सके और घास-पात बहुत हो जाय तो एक बार और निंद देना होगा। जहाँ बीज छींटकर बोये जाते हैं वहाँ पौधों की छटनी करनी चाहिए। पौधों में भूमि की उर्वरा शक्ति अनुसार चार इंच से छः इंच की दूरी कर देना अच्छा होगा।

सिंचाई

वर्षा ऋतु में होने वाली रागी को नहीं सींचा जाता परन्तु वर्षा के पहले में नर्सरी बीज तैयार करने के लिए नर्सरी को सींचना होता है। दक्षिण भारत में जहाँ सर्दी में भी रागी बोई जाती है वहाँ अवश्य सींचना होता है सो आवश्यकता अनुसार सींचना चाहिए। सिंचाई वाली रागी के लिए क्यारियाँ बनाकर उसमें रोपते हैं।

कीट और व्याधियाँ

मरुवा को कीट तथा व्याधियों से ऐसी हानि नहीं होनी कि जिसके

लिए विशेष ध्यान देने की आवश्यकता हो। व्याधि में पत्तों पर कहीं-कहीं कुछ धब्बे वाली व्याधि (Leaf blight) हो जाती है परन्तु उसके लिए विशेष ध्यान देने की आवश्यकता नहीं। टिड्डे इत्यादि कीट जो दूसरी फसलों के पत्ते काट देते हैं मरुवा के पत्ते भी काट देते हैं। उनके सिवाय दो-एक पतंग की जाति के बालकीट धड़ छेदकर उसमें रहते हैं। यदि कोई हानिकर्ता दिखे तो चुनवा देना चाहिए। रोप वाले पौधों को कभी-कभी दीमक भी हानि पहुँचाती है जिसका इलाज सिचाई ही है।

गोदाम में भी इसे कोई कीट हानि नहीं पहुँचाते बहुधा कोठियों में या खत्तियों में भरकर रखते हैं। सील से खत्तियों में कभी-कभी विषैली वायु पैदा हो जाती है उसकी जाँच के लिए खत्ती खोलकर उसमें पहले एक मुर्गा उतार देते हैं और बाद में यदि वह न मरे तो मजदूर अन्दर उतरकर निकालते हैं। वरना कुछ देर खुला छोड़कर सावधानी से बीज निकालते हैं।

फसल की तैयारी और उपज

आषाढ़ में बोई जानेवाली फसल आश्विन (सितम्बर-अक्तूबर) तक और आषाढ़ में रोपी जानेवाली फसल भाद्रपद (अगस्त-सितम्बर) में तैयार हो जाती है। देर से होनेवाली जाति पन्द्रह-बीस दिन बाद तैयार होती है। दक्षिण भारत में भी यही समय है। बोने के समय से चार-साढ़े चार महीने लगते हैं। पौष-माघ (दिसम्बर-जनवरी) वाली फसल भी चार महीने में तैयार हो जाती है। जब पेड़ और बाल सूख जायें तब फसल काटना चाहिए। मरुवा में कटाई के लिए पहले सिर काट लिये जाते हैं। चूँकि सब सिर एक साथ नहीं पकते बहुधा कुछ अधपके छोड़ दिये जाते हैं जिन्हें दूसरी बार काटना पड़ता है। कटे हुए बाल खलिहान में ले जाकर सुखाते हैं और बाद में थोड़ी फसल हुई तो उसे ढण्डों से पीटकर दाना छुड़ा लेते हैं। जब अधिक हीती है तो बैलों अथवा

रोलर से गाहनी करते हैं। सिर काटने के बाद जो पौधे रह जाते हैं उन्हें बाद में काटकर पूले बांधते हैं।

जब गहवाई हो जाती है तो फटककर या हवा में उड़ाकर दाना-भूसा पृथक् कर लेते हैं।

उपज— इसकी उपज का कोई ठिकाना नहीं। यदि वर्षा अधिक हो जाय तो उपज गिर जाती है। यदि आवश्यकतानुसार हुई और भूमि अच्छी हुई तो पन्द्रह-बीस मन तक हो जाती है। जहां सींचकर फसल ली जाती है वहां तो उपर्युक्त उपज में ड्योढ़ी हो जाती है।

मॉलीसन महोदय गुजरात और कोनकन की उपज सोलह मन से बीस मन आंकते हैं और भूसे की उपज पच्चीस मन से तीस मन आंकते हैं। गेमी महोदय बीज की उपज बारह से चौदह बताते हैं और पहाड़ी भूमि में तो पांच-छः मन ही होती है। यग्रनारायण अय्यर अपनी पुस्तक में मैसूर की बरानी खेतों की उपज अठारह मन और सिंचाई वाले की पैंतीस-छत्तीस मन बतलाते हैं। भूसे की उपज पच्चीस-तीस मन हो जाती है, औसत उपज बरानी खेतों की उनके मतानुसार दस-बारह मन प्रति एकड़ ली जा सकती है।

वितरण और व्यवसाय

छोटे-छोटे कृषक तो खाने भर ही मरुवा लगाते हैं सो अपने ही उपयोग में ले आते हैं। बड़े कृषक तो सम्हाल कर रखते हैं अथवा स्थानीय व्यवसायियों को बेच देते हैं। विदेशों से तो इसका व्यवसाय है ही नहीं। अन्तरप्रान्तीय भी नहीं के बराबर है। मरुवा जिस प्रदेश में उपजता है वही खाया जाता है।

उपयोग और गुण

मरुवे के पोषक पदार्थ—

जल	आमिषजातीय	स्नेह	खनिज
१३.१%	७.१%	१.३%	२.२%

सर्कराजातीय	खटिकCa	फा०	लोहा
७६.३%	०.३३%	०.२७%	०.०५४%

खाद्योज ए० ७० यूनिट, खाद्योज बी० १४० यूनिट ।

उष्णोत्पादक शक्ति १६६ केलोरी प्रति छटांक

इन अन्नो की तुलना गेहूँ, ज्वार, मक्का, बाजरा किसी के भी अन्नो के साथ की जाय तो ज्ञात होगा कि मरुवे में पोषक द्रव्य बहुत कम हैं लेकिन चूँकि कम मेहनत से फसल तैयार हो जाती है लोग बो देते हैं और गरीब लोग खाते भी हैं । मरुवा बिकता भी काफी सस्ता है । मरुवा को खाने योग्य बनाने के पहले इसे ओखली में छांटना पड़ता है, क्योंकि इसके साथ छिलका लगा रहता है । छांटने के पश्चात् पीसकर रोटी बनाते हैं । इसे भूँजकर भी पीसते हैं । आटे का हलुवा भी बनाकर खाते हैं ।

: १२ :

शमई, कुटकी, गुंडली, सांवां,

The little millet, Sava, panicum miliare.

साँवाँ की खेती करीब-करीब सब प्रदेशों में होती है परन्तु उत्तर प्रदेश तथा बिहार में कुछ विशेष होती है। इसका पेड़ साधारण भूमि में तीन-चार फुट ऊँचा हो जाता है। अच्छी भूमि में पाँच फुट तक भी बढ़ जाता है। पत्ते कंगनी जैसे लेकिन चौड़ाई में अधिक चौड़े और लम्बाई में छोटे होते हैं। बाल सिर पर आता है जो दूर से देखने पर कमजोर ज्वार के भुट्टे के समान नजर आता है। ऐसा ज्वार का भुट्टा तीन-चार इंच लम्बा होगा, परन्तु साँवाँ आठ-दस इंच लम्बा होता है। मोटाई में डेढ़-दो इंच व्यास का होता है। साँवाँ के बीज अधिकतर सफेद होते हैं। किसी-किसी जाति के कुछ हरे या स्लेटी रंग के भी होते हैं। बीज गोल बड़ी सरसों जैसे होते हैं।

जातियाँ—बीज के रंग तथा भुट्टे की बनावट अनुसार और जल्दी तथा देरी से पकनेवाली जाति अनुसार इसके नाम हैं। खरीफ में होने वाले साँवाँ के सिवाय एक साँवाँ ऐसा भी होता है जो ग्रीष्म ऋतु में होता है उसे चैतुआ साँवाँ कहते हैं। रंग के हिसाब से देखा जाय तो साँवाँ सफेद या स्लेटी रंग का होता है। बाल के विचार से देखा जाय तो (१) एक मुठिया जिसका बाल ठोस हो (२) नर कटिया जिसका बाल पतला होता है। (३) झलरिया इसका बाल बिखरा हुआ होता है। ये नाम बिहार में प्रचलित हैं।

जलवायु

बीस-पच्चीस इंच वर्षा वाले स्थानों में साँवाँ अच्छा हो जाता है। उससे अधिक तीस इंच तक हो तो और भी अच्छा है। वातावरण उष्ण

औरतर चाहिए। अंकुर फेंकते समय भूमि में तरी अच्छी होनी चाहिए।

भूमि और जुताई

साधारणतः इसके लिए ऐसी ही जमीन रहती है जो हल्की हो। बलुआ दुमट में ही इसे स्थान मिलता है। वैसे फसलों के हेरफेर में पड़ जाय तो दुमट जमीन भी इसे मिल जाती है।

जुताई—वही साधारण जो अन्य छोटे धान्य के लिए की जाती है। ग्रीष्म ऋतु में एक बार हल और एक बार बखर तथा बरसात होते ही बखर चला कर बो देते हैं। कहीं-कहीं बरसात के पहले ही बो देते हैं। ऐसा अनुमान है कि बरसात के पहले जो बोया जाय तो उन स्थानों में जहां तीस इंच से अधिक वर्षा होती है वहां सांवां की उपज अच्छी होती है। ऐसे स्थानों में देरी से बोने से बीज की उपज कम और भूसे की बहुत हो जाती है।

खाद और फसल का हेरफेर

सांवां में खाद्य पदार्थ—

जल	ना०	खनिज
बीज में १२.६८%	१.४५	४.५३

सांवां की उपज साधारण खेतों में चार-पांच और अच्छे खेतों में आठ-दस मन तक हो जाती है। यदि पांच मन उपज बीज की मानकर गणना की जाय तो २.६ सेर ना० प्रति एकड़ पड़ती है। उतनी ही सांवां की कड़बी में मान ली जाय तो लगभग छः सेर ना० पहुँचे इतना खाद तो अवश्य देना होगा। जिसके लिए

कृत्रिम खाद एमोनियम सल्फेट	७५ मन
या खली का खाद	३ मन
या गोबर का खाद ना० की दूनी मात्रा के लिए	६० मन

चाहिए।

यह फसल भी ऐसी नहीं है जिसके लिए कृत्रिम खाद पर ध्यान

दिया जाय । हो सके तो गोबर का खाद अवश्य देना चाहिए ।

हेरफेर—सांवां की फसल खरीफ की होती है सो इसके बाद रबी की कोई फसल जैसे गेहूं, जव, किराओ, मसूर इत्यादि लगा सकते हैं । सांवां के साथ ज्वार, अरहर और मरुवा भी बो देते हैं ।

बीज और बोआई

सांवां के बीज भी कृषक अपने ही रख लेते हैं या मित्रों से खरीद लेते हैं । बीज लगता भी बहुत थोड़ा ही है । खरीफ वाली जातियों के लिए तीन-चार सेर बीज काफी होता है । चैती सांवां के लिए इसकी ड्योढ़ी मात्रा चाहिए । जहां बरसात के पहले बोते हैं वहां जेष्ठ के अन्त में बो दिया जाता है । अधिकांश स्थानों में वर्षारम्भ के साथ ही आषाढ़ (जून) में बोते हैं । चैती सांवां फाल्गुन (फरवरी-मार्च) के अन्त तक बो दिया जाता है ।

सांवां बहुधा छींटकर ही बोते हैं और छींटने के पश्चात् दतारी या कील वाले हेरो से बीज मिला देते हैं । जहां हेरो न हो वहां हलका हल चलाकर हेंगा फिरा देते हैं । चैती सांवां को सींचना होता है सो क्यारियां बनाकर उनमें बीज छींटना चाहिए । यदि कतारों में बोया जाय तो कतारों की दूरी नौ इंच से एक-एक फुट की ठीक होगी ।

निंदाई और देखभाल

पौधों की छंटनी के साथ-साथ निंदाई एक बार कर देनी चाहिए ताकि घास-पात निकाल दिया जाय । कतारों में पौधों की दूरी आठ-नौ इंच की कर देना उचित होगा । छींटकर बोये हुए खेतों में पौधे से पौधे का अन्तर सात-आठ इंच ठीक होगा । सांवां को भी पक्षी काफी हानि पहुँचाते हैं इसलिए उनसे रक्षा के लिए रखवाली करनी पड़ती है ।

सिंचाई

सिर्फ चैती सांवां को सींचना होता है सो आवश्यकताअनुसार पानी देना चाहिए ।

कीट और व्याधियाँ

इनसे ऐसी हानि नहीं होती जिसके लिए विशेष ध्यान दिया जाय । कहीं-कहीं कायमे (Smut) वाली व्याधि के पौधे हो जाते हैं सो ऐसे बाल वाले पौधे दिखाई दें तो उन्हें नष्ट कर देना चाहिए ।

फसल की तैयार और उपज

साँवां की फसल जल्दी आने वाली तीन महीने में और देरी वाली चार महीने में आ जाता है । आश्विन (सितम्बर-अक्तूबर) में फसल काट ली जाती है । फाल्गुन के अन्त में जो साँवाँ बोया जाता है उसे जेष्ठ में काट लेते हैं ।

साँवां की उपज चार-पांच मन से आठ-दस मन तक भूमि की जाति अनुसार हो जाती है, परन्तु इसके साथ भी छिलका बहुत रहता है जिसे निकाल देना पड़ता है । यथार्थ में देखा जाय तो दो तिहाई भाग या उससे कुछ कम ही उपयोग के योग्य होता है । कड़बी की उपज बीज से दुगुनी हो जाती है । बाल से बीज निकालने पर जो भूसा निकलता है वह बीज का तिहाई भाग होगा ।

वितरण और व्यवसाय

साँवां की खपत कृषकों के घरों में ही हो जाती है । थोड़ा-बहुत व्यवसाय हुआ भी तो वह स्थानीय व्यवसायियों के हाथ में ही रहता है ।

उपयोग और गुण

साँवां के पोषक द्रव्य			प्रतिशत	
जल	आमिषजातीय		स्नेह	खनिज
११.५	७.७		४.७	४.८
खटिक	फा०	लोहा०	खाद्योज 'बी'	उष्णोत्पादकशक्ति
०.०२	०.३६	०.०७११	१०० यूनिट	१८६ केलोरी प्रति छटांक

गुण—मधुर, हल्का, शीतल, कफ, पित्त नाशक और मलरोधक होता है । पोषक द्रव्यों को देखा जाय तो ज्ञात होगा कि कंगनी के बाद साँवां

का स्थान होगा और सांवां के बाद रागी और कोदों को स्थान मिलेगा ।

सांवां की एक (*Panicum Crusgalli* Var *Fruementaceum*) जाति और होती है जो छः-सात सप्ताह में तैयार हो जाती है । इसके बीज फलाहार के काम में आते हैं । इसकी खेती सांवां की खेती के समान ही होती है ।

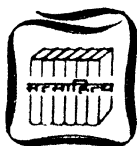
परिशिष्ट १
अन्नों की खेती का क्षेत्रफल और उपज^१

नाम फसल	क्षेत्रफल ^१ ००० एकड़		उपज ^१ ००० टन (१ टन = २७.२ मन)	
	१९५१-५२ ^२	१९५२-५३ ^३	१९५१-५२ ^२	१९५२-५३ ^३
गेहूं	२३,४५०	२४,०४१	६,०३६	६,७६२
चावल	७३,६६५	७४,६७४	२०,७४१	२३,४२४
जव	७८,३५	७,५००	२,२६३	२,६६४
जुवार	३६,१४४	४१,६४५	५,६४४	६,०३८
बाजरा	२२,८३६	२५,२८२	२,२६६	२,६२२
मक्का	८,०७३	८,७६६	२,०२१	२,६०७
रागी	५,३६६	५,३८८	१,२१२	१,२३५
छोटे धान्य	११,८३४	१२,१७०	१,८६१	१,६३२
	कुल १६२,२३६	१६६,७६६	४२,४४०	४७,५८४

^१ April, Statistics in India vol. VIII No. 8 November, 1953 p. 620, ^२ Revised ^३ Final.

हमारा ग्रामोपयोगी साहित्य

१. कृषिज्ञान-कोष
 २. सागभाजी की खेती
 ३. फलों की खेती
 ४. अन्नों की खेती
 ५. बलहन की खेती
 ६. चारादाना
 ७. हमारे गांव की कहानी
 ८. पशुओं का इलाज
 ९. गांव के उद्योग-धंधे
 १०. गांव सुखी, हम सुखी
 ११. खादी द्वारा ग्राम-विकास
-
-



दो रुपए